अग्निशिखा एवम् पुरोधा

अखिल भारतीय पत्रिका — अप्रैल 2024

श्रीमाँ का प्रतीक

विषय-सूची

श्रीमाँ का प्रतीक

(श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के वचन)

प्रार्थना		३
प्रतीक क्या है?		४
श्रीअरविन्द का प्रतीक		५
श्रीमाँ का प्रतीक		६
श्रीमाँ के हस्ताक्षर		७
परमा जननी, महाशक्ति		८
माँ के चार महान् स्वरूप		१०
महेश्वरी		१०
महाकाली		१२
महालक्ष्मी		१३
महासरस्वती		१५
बारह गुण		१९
श्रीअरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षाकेन्द्र के प्रतीक का अर्थ		३७
श्रीअरविन्द सोसायटी का प्रतीक		३८
पुरोधा : दैनन्दिनी		३९
आती याद बनाने वाले की (कविता)	इन्दुमती	४२
'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' : नारियों की सच्ची भूमिका	नवजातजी	४३
टन्... टन्... टन्!	वन्दना	४५

पाठकों को हम यह याद दिला दें कि वैसे पुराने कलेवर की 'अग्निशिखा' का यह हमारा ५४वाँ वर्ष चल रहा है।

प्रार्थना

१७ जून १९१४

जो होना चाहिये उसके आगे अब तक जो कुछ सोचा या प्राप्त किया गया है वह सामान्य, अति तुच्छ और अपर्याप्त है। अतीत की पूर्णताओं में अब कोई शक्ति नहीं है। नयी शक्तियों को रूपान्तरित करने और उन्हें तेरी दिव्य इच्छा के अधीन करने के लिए एक नये सामर्थ्य की ज़रूरत है। हमेशा तेरा यही उत्तर होता है, "माँग और यह हो जायेगा।" और अब हे प्रभो, तुझे इस सत्ता के अन्दर एक सतत अभीप्सा, अविच्छिन्न, तीव्र और उत्कट अभीप्सा पैदा करनी चाहिये जो निर्विकार और प्रशान्त हो। नीरवता और शान्ति तो हैं : साथ ही तीव्रता का अध्यवसाय भी होना चाहिये। ओह, तेरा हृदय प्रसन्नता की जयजयकार कर रहा है मानों जो तू चाहता है वह अपनी परिपूर्णता के पथ पर है।... इन सब तत्त्वों को नष्ट कर दे ताकि उनकी भस्म से ऐसे तत्त्व निकल सकें जो नयी अभिव्यक्ति के अनुकूल हों।

ओह, तेरी ज्योतिर्मयी 'शान्ति' की विशालता!

ओह, तेरे सर्वशक्तिसम्पन्न 'प्रेम' की सर्वशक्तिमत्ता!

और हम जो कुछ सोच सकते हैं उसके परे है हम जिसे आते हुए अनुभव करते हैं उसकी अकथनीय भव्यता। हमें 'विचार' दे, हमें 'शब्द' दे, हमें 'शक्ति' दे।

हे नवजात 'अज्ञात', जगत् के रंगस्थल में प्रवेश कर!

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. १०४

प्रतीक क्या है?

प्रतीक, मेरी समझ में, एक स्तर का एक रूप है, जो दूसरे स्तर के किसी सत्य को दर्शाता है। उदाहरणार्थ, झण्डा राष्ट्र का प्रतीक है। किन्तु साधारणतया, सभी रूप प्रतीक होते हैं। हमारा यह शरीर हमारी यथार्थ सत्ता का प्रतीक है, और प्रत्येक वस्तु किसी उच्चतर सत्य का प्रतीक होती है। हाँ, प्रतीक विभिन्न प्रकार के होते हैं :

१. रूढ़ प्रतीक : वे जो वैदिक ऋषियों ने अपने आस-पास की वस्तुओं से गढ़े थे। गाय प्रकाश का अर्थ देती थी, क्योंकि एक ही शब्द 'गो' रश्मि और गाय—दोनों का द्योतक था, और क्योंकि गाय उनकी अमूल्यतम सम्पत्ति थी, जो उनका भरण-पोषण करती थी और जिसके चुराये अथवा छिपाये जाने का सदैव भय रहता था। किन्तु इस प्रकार का प्रतीक एक बार सृष्ट हुआ नहीं कि जीवन्त हो उठता है।...

२. जिन्हें हम जीवन-प्रतीक कह सकते हैं, वे कृत्रिमतया नहीं चुने जाते अथवा वे सचेतन रूप से मन द्वारा गढ़े-समझे नहीं जाते, बल्कि वे दैनन्दिन जीवन से अथवा उन परिस्थितियों से स्वाभाविकतया विकसित होते हैं, जो हमारे जीवन के साधारण मार्ग को प्रभावित करती हैं। प्राचीन लोगों के लिए पर्वत योग-मार्ग का प्रतीक था—स्तर के ऊपर स्तर, शिखर के ऊपर शिखर।...

३. वे प्रतीक जिनमें एक अपना सहज औचित्य और शक्ति होती है। आकाश अथवा आकाशरूपी देश निःसीम, सर्वव्यापी सनातन ब्रह्म का प्रतीक है। किसी भी जाति में वह यही अर्थ व्यक्त करेगा। इसी प्रकार सूर्य अखिल विश्व में अतिमानसिक प्रकाश का, दिव्य विज्ञान का अर्थ व्यक्त करता है।

४. मानसिक प्रतीक, जिनके उदाहरण हैं संख्या अथवा वर्णमाला। ये भी एक बार मान्य हुए नहीं कि काम करने लगते हैं, और उपयोगी हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, ज्यामिति की आकृतियों के विभिन्न अर्थ लगाये गये हैं।...

CWSA ३०, १३७-३८ **श्रीअरविन्द**

श्रीअरविन्द का प्रतीक

The descending triangle represents Sat. Chit. Ananda.
The ascending triangle represents the aspiring answer from matter under the form of life, light and love.
The junction of both - the central square - is the perfect manifestation having at its centre the Avatar of the Supreme - the lotus.
The water - inside the square - represents the multiplicity, the creation.

नीचे उतरता हुआ त्रिकोण सत्, चित्, आनन्द का प्रतीक है।

ऊपर उठता हुआ त्रिकोण जीवन, ज्योति और प्रेम के रूप में अभीप्सा करते जड़-द्रव्य के उत्तर का प्रतीक है।

दोनों का संयोजन—बीच का समचतुष्कोण—है पूर्ण अभिव्यक्ति जिसके बीच में परम पुरुष का अवतार—कमल—है।

समचतुष्कोण के अन्दर जल बहुलता का, सृष्टि का प्रतीक है।

४ अप्रैल, १९५८ **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १३, पृ. २९-३०

श्रीमाँ का प्रतीक

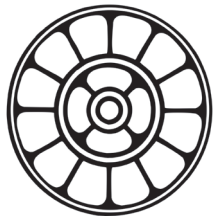

केन्द्रीय वृत्त परम जननी, 'महाशक्ति' का प्रतीक है।

चार केन्द्रीय पंखुड़ियाँ माँ के चार रूप हैं—और बारह पंखुड़ियाँ, उनकी बारह कलाएँ।

*

यह 'परम चेतना' के श्वेत 'कमल' का प्रतीकात्मक चित्र है। इसके केन्द्र में 'महाशक्ति' (माँ का वह रूप जो वैश्व सृष्टि में व्यक्त हुआ) अपने चार रूपों और बारह कलाओं के साथ हैं।

*

केन्द्रीय वृत्त 'भागवत चेतना' का प्रतीक है।

चार पंखुड़ियाँ माता की चार शक्तियों की प्रतीक हैं।

बारह पंखुड़ियाँ माता की बारह शक्तियों की जो उनके काम के लिए अभिव्यक्त हुई हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ६४-६५

१५ अप्रैल १९३४ :

तत्त्वतः (सामान्य सिद्धान्त के रूप में) बारह शक्तियाँ वे स्पन्दन हैं जो पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए अनिवार्य हैं। ये आरम्भ से ही श्रीमाँ के मस्तक के ऊपर दिखलायी देती हैं। अतः ये वास्तव में सूर्य की बारह रश्मियाँ हैं, सात नहीं, अथवा बारह ग्रह इत्यादि नहीं हैं।

CWSA ३२, ५९८ **श्रीअरविन्द**

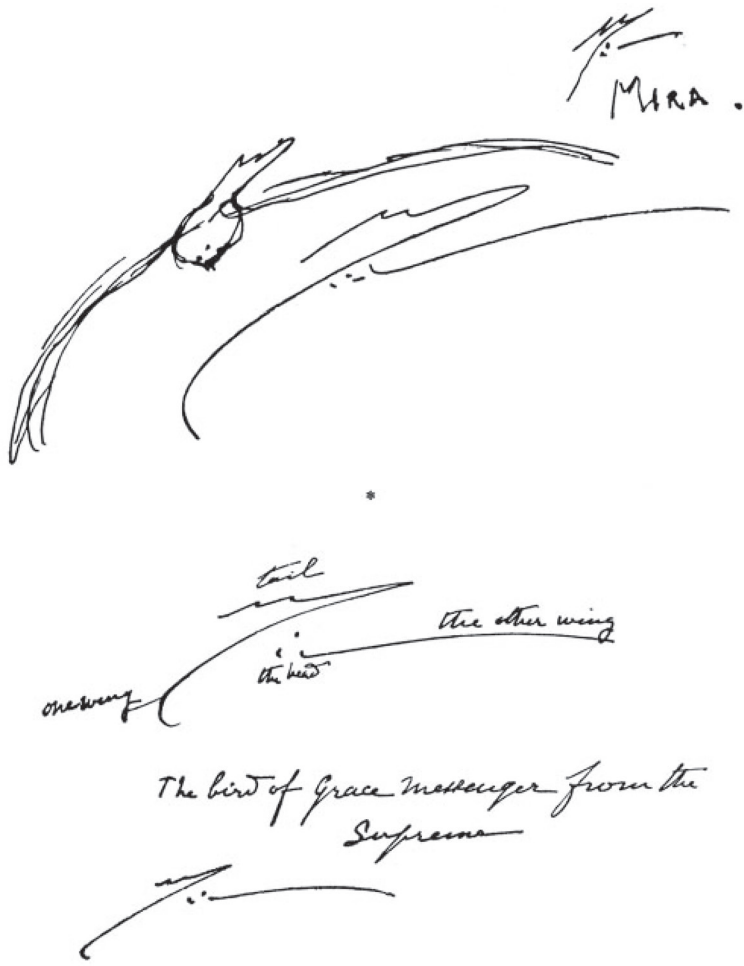

आपके हस्ताक्षर ने पंख ले लिये हैं!

ओह, हाँ—यह एक पक्षी है!

यह 'कृपा का पक्षी' है जो स्वर्ग से अवतरित हो रहा है। अन्त का बिन्दु बहुत महत्त्वपूर्ण है। बिन्दु देखती हुई चेतना है: आँख। एक पूँछ भी है, एक पंख, दूसरा पंख, और आँख—देखती हुई चेतना।

११ अगस्त १९६१ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

परमा जननी, महाशक्ति

(परम-पुरुष की चेतना और शक्ति)

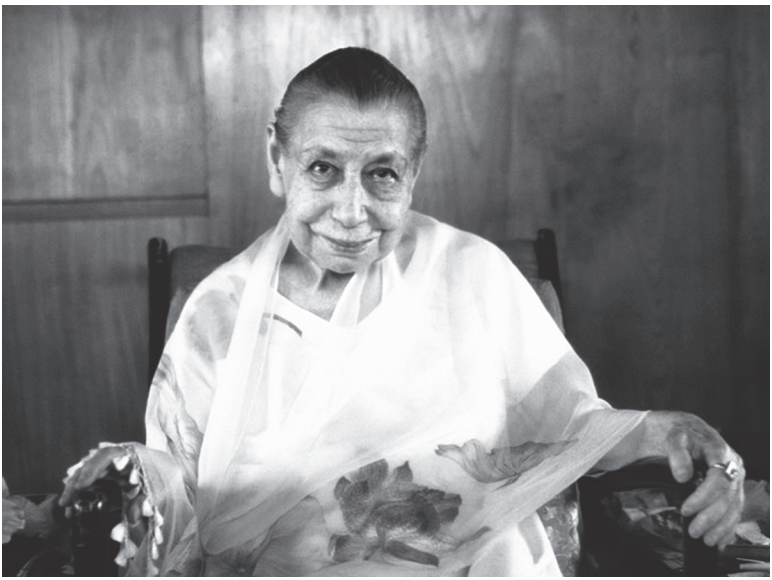

जिस 'एक' की हम माता के रूप में पूजा करते हैं वे भागवत चित्-शक्ति हैं जो सारी सृष्टि पर छायी हुई हैं। एक होते हुए भी उनके इतने अधिक पहलू हैं कि तेज़-से-तेज़ मन और अधिक-से-अधिक स्वतन्त्र और विशाल बुद्धि के लिए भी उनकी गति का अनुसरण कर सकना असम्भव है। माता परम-पुरुष की चेतना और शक्ति हैं और वे अपनी सारी सृष्टियों के बहुत ऊपर हैं। फिर भी उनकी गतिविधि की कुछ चीज़ें उनके साकार रूपों के द्वारा देखी और अनुभव की जा सकती हैं और ज़्यादा आसानी से पकड़ में आ सकती हैं क्योंकि भगवती माँ जिन दिव्य रूपों में अपने जीवों के सम्मुख प्रकट होना स्वीकार करती हैं उनके स्वभाव और कर्म ज़्यादा निश्चित और सीमित होते हैं।

जब हम समस्त जीवों को तथा विश्व को धारण करने वाली सचेतन शक्ति के साथ एकता के सम्पर्क में आते हैं तभी माता की तीन प्रकार की सत्ता से अवगत हो सकते हैं। वे परात्पर आद्या परमा शक्ति के रूप में सभी लोकों के ऊपर खड़ी रह कर परम-पुरुष के कभी व्यक्त न होने

वाले रहस्य के साथ सृष्टि का नाता जोड़ती हैं। वैश्व रूप में वे सारे ब्रह्माण्ड में बसी हुई, महाशक्ति के रूप में इन सभी सत्ताओं को रचती हैं, इन सब अनगिनत प्रक्रियाओं और शक्तियों को धारण करती हैं और उनमें समायी रहती हैं, वे ही उन्हें सहारा देती हैं और उनका सञ्चालन करती हैं। व्यक्तिगत रूप में वे अपनी सत्ता के इन दोनों अधिक विशाल रूपों की शक्ति को मूर्तरूप देती हैं, उन्हें जीवन देती हैं और हमारे समीप लाती हैं। वे मानव व्यक्तित्व और दिव्य प्रकृति के बीच की कड़ी बनती हैं।

एकमेव आद्या परात्पर शक्ति के रूप में माता सब लोकों के ऊपर स्थित हैं और अपनी शाश्वत चेतना में परम पुरुष को धारण करती हैं। वे अकेली ही अपने अन्दर चरम शक्ति और ऐसी उपस्थिति को लिये रहती हैं जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वे ही उन सत्यों को धारण करती या पुकारती हैं जिन्हें इस जगत् में प्रकट होना है। वे उन सत्यों को, उस रहस्यमय स्थान से, जहाँ वे छिपे हुए थे, उतार कर अपनी अनन्त चेतना की ज्योति में नीचे लाती हैं और उन्हें अपने सर्वशक्तिमान् सामर्थ्य के द्वारा शक्ति का रूप तथा असीम जीवन और विश्व में शरीर प्रदान करती हैं। परम पुरुष उन माता के अन्दर सनातन काल के लिए अनन्त सच्चिदानन्द के रूप में अभिव्यक्त हैं और उन्हीं के द्वारा लोकों में वे ईश्वर-शक्ति के एक और द्विविध रूप में तथा पुरुष-प्रकृति के द्वैत तत्त्व में अभिव्यक्त होते हैं। परम पुरुष माता के द्वारा अनेक लोकों और चेतना की भूमिकाओं में तथा देवता और उनकी शक्तियों में मूर्तिमान् हुए हैं। उन्हीं के कारण वे जाने और अजाने लोकों में जो कुछ है उन सब रूपों में साकार हुए हैं। सब कुछ परम पुरुष के साथ माता की लीला है। माता ने ही इस सारे संसार में सनातन के रहस्यों और अनन्त के चमत्कारों को व्यक्त किया है। वे ही सब कुछ हैं क्योंकि सभी चीज़ें दिव्य चित्-शक्ति के अंश और भाग हैं। माता जिस बात का निश्चय करती हैं और जिसके लिए परम पुरुष स्वीकृति देते हैं उसके सिवाय यहाँ या कहीं और कुछ भी नहीं हो सकता। परम पुरुष की प्रेरणा से माता अपने सर्जनशील आनन्द में बीज के रूप में डाल कर जिन चीज़ों को देखती और आकार देती हैं उनके सिवाय और कोई चीज़ रूप धारण नहीं कर सकती।

CWSA ३२, १४-१५ **श्रीअरविन्द**

माँ के चार महान् स्वरूप

माँ के चार महान् स्वरूप, माँ की जो प्रमुख शक्तियाँ और व्यक्तित्व हैं उनमें से चार रूप, इस विश्व का मार्गदर्शन करने तथा भौतिक लीला के साथ व्यवहार करने के लिए आगे रहते हैं। उनमें से एक स्थिर विशालता, व्यापक ज्ञान, प्रशान्त अनुग्रह और अपार करुणा, सबसे बढ़े-चढ़े, सर्वश्रेष्ठ वैभव और सब पर शासन करने वाली महानता का व्यक्तित्व है। दूसरा रूप उनकी भव्य शक्ति के बल को, दुर्धर्ष आवेग को, उनके क्षात्र स्वभाव को, दुर्दमनीय संकल्प को, प्रचण्ड वेग और सारे संसार को हिला देने वाली शक्ति को मूर्त रूप देता है। तीसरा रूप उनकी गभीर और रहस्यमय सुन्दरता, समस्वरता और सामञ्जस्य, उनकी गूढ़ और सूक्ष्म समृद्धि और विवश करने वाले आकर्षण और हृदय को जीत लेने वाले लावण्य के कारण उज्ज्वल, मधुर और अद्‌भुत है। और चौथा स्वरूप उनके अन्तरंग ज्ञान, सचेत और दोष-रहित कर्म तथा हर चीज़ में शान्त और यथार्थ पूर्णता के गुप्त, गभीर सामर्थ्य से युक्त होता है। इन स्वरूपों के कुछ गुण हैं—बुद्धिमत्ता, शक्ति, सामञ्जस्य और पूर्णता, और वे अपने साथ धरती पर इन गुणों को लाते हैं और मनुष्य के रूप में आने वाली अपनी विभूतियों में प्रकट करते हैं। जो लोग अपनी भौतिक प्रकृति को माता के सीधे और जीते-जागते प्रभाव की ओर खोल सकते हैं उनके दिव्यता की ओर चढ़ने के अनुपात में ही उनमें इन गुणों की स्थापना होगी। इन चार स्वरूपों के चार महान् नाम हैं, महेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी, और महासरस्वती।

महेश्वरी

राजराजेश्वरी महेश्वरी—चिन्तनशील मन और संकल्प के ऊपर 'बृहत्' में विराजती हैं और इन दोनों को ऊँचा उठा कर और महान् बना कर प्रज्ञा—ज्ञान—और विशालता देती हैं या उनमें उनसे परे की किसी उच्चतर भव्यता की बाढ़ ला देती हैं। महेश्वरी ही वे ज्ञानमयी और शक्तिशाली माता हैं जो हमें अतिमानसिक अनन्तताओं के प्रति, विश्व-भर की विशालता, सबसे ऊँची ज्योति की भव्यता की ओर, चामत्कारिक ज्ञान के ख़ज़ाने की

ओर और माता की शाश्वत शक्तियों की असीम गति के प्रति खोल देती हैं। वे प्रशान्त और अद्‌भुत हैं, सदा ही महान्‌ और स्थिर रहती हैं। उन्हें कोई चीज़ विचलित नहीं कर सकती क्योंकि उनमें सम्पूर्ण ज्ञान है, वे जो कुछ जानना चाहें, वह उनसे छिपा नहीं रहता। वे सभी वस्तुओं को, सभी सत्ताओं को, सबके स्वभाव को और उन्हें चलाने वाले तत्त्वों को, संसार के नियमों और उसके कालचक्र को जानती हैं। वे भूत और वर्तमान को जानती हैं और जानती हैं कि क्या होना चाहिये। उनमें एक ऐसी शक्ति है जो हर चीज़ का सामना करके उस पर अधिकार कर लेती है, उनकी विशाल, अगोचर प्रज्ञा और उत्कृष्ट प्रशान्त बल के आगे अन्त तक कोई नहीं ठहर सकता। वे अपने संकल्प में सम, धीर और अविचल हैं। वे मनुष्यों के साथ उनकी प्रकृति के अनुसार और चीज़ों और घटनाओं के साथ उनकी शक्ति और उनमें छिपे सत्य के अनुसार व्यवहार करती हैं। उनमें पक्षपात का नाम भी नहीं है, परन्तु वे परम पुरुष के आदेश का पालन करती हैं, कुछ को ऊपर उठाती हैं और कुछ को नीचे फेंकती या अपने पास से हटा कर अज्ञानान्धकार में धकेल देती हैं। वे ज्ञानी को अधिक महान्‌ और ज्योतिर्मयी प्रज्ञा—ज्ञान—देती हैं और सूक्ष्म दृष्टिवाले व्यक्ति को अपनी मन्त्रणाओं में स्थान देती हैं, विरोधियों पर उनके विरोध का परिणाम लादती हैं और अज्ञानी और मूर्ख को उसके अज्ञान और अन्धेपन के अनुसार चलाती हैं। वे प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति के अलग-अलग तत्त्वों का, उन तत्त्वों की आवश्यकता, प्रेरणा और माँगे हुए फल के अनुसार व्यवहार करती और उत्तर देती हैं, उन पर ज़रूरी दबाव डालती हैं या फिर उन्हें अपनी पोसी हुई स्वाधीनता में अज्ञान-भरे रास्तों पर समृद्धि या नाश के लिए छोड़ देती हैं। वे सबसे ऊपर हैं, किसी से बँधी नहीं हैं। उन्हें विश्व की किसी चीज़ से लगाव नहीं है। फिर भी उनके अन्दर—औरों की अपेक्षा कहीं अधिक—विश्वजननी का मातृ-हृदय है, क्योंकि उनकी करुणा अनन्त और अखूट है। उनकी दृष्टि में सभी—यहाँ तक कि असुर, राक्षस, पिशाच, विद्रोही और विरोधी भी—उनके बच्चे और उस 'एक' के अंश हैं। उनका त्यागना भी केवल स्थगित करना है, उनका दण्ड भी कृपा है। लेकिन उनकी करुणा उनकी बुद्धि को अन्धा नहीं बनाती और न उनके कर्म को नियत पथ से डिगाती है। वस्तुओं का सत्य ही उनका एकमात्र लक्ष्य

है और ज्ञान ही उनकी शक्ति का केन्द्र। हमारी अन्तरात्मा और प्रकृति को दिव्य सत्य में बदलना उनका उद्देश्य और पुरुषार्थ है।

महाकाली

महाकाली और ही प्रकृति की हैं। विस्तार नहीं ऊँचाई, प्रज्ञा नहीं बल और सामर्थ्य उनकी शक्ति के विशेष गुण हैं। उनमें अत्यधिक तीव्रता है, सफलता पाने के लिए शक्ति का एक प्रचण्ड आवेग है, एक दिव्य उग्रता है जो हर सीमा और बाधा को छिन्न-भिन्न करने के लिए तेज़ी से आगे बढ़ती है। उनकी सारी दिव्यता उनके तूफ़ानी-प्रचण्ड कार्यों की भव्यता में फूट पड़ती है; वे तेज़ी और तुरन्त फलदायक प्रक्रियावाली हैं, उनका वार सीधा और तेज़ होता है। वे सामने से ऐसा प्रहार करती हैं जिसके आगे सब कुछ धरा का धरा रह जाता है। असुर के लिए उनका मुख भयानक है, भगवान् से द्वेष करने वालों के विरुद्ध उनका मनोभाव भयंकर और निष्ठुर होता है क्योंकि वे ऐसी रणचण्डी हैं जो कभी युद्ध से पीछे नहीं हटतीं। वे अपूर्णता को नहीं सहतीं, वे मनुष्य के अन्दर अनिच्छुक तत्त्वों के साथ कठोर व्यवहार करती हैं और जो आग्रहपूर्वक अज्ञान और अन्धकार से चिपटे रहते हैं उनके साथ सख़्ती से व्यवहार करती हैं। उनका कोप विश्वासघात, मिथ्याचार और अशुभ के विरुद्ध भीषण और तीव्र होता है। वे भगवान् के कार्य में उदासीनता, उपेक्षा और प्रमाद नहीं सह सकतीं और ज़रूरत पड़ने पर असमय सोने वाले और आवारागर्द को प्रहार द्वारा तीव्र पीड़ा देकर तुरन्त जगा देती हैं। शीघ्रगामी, सरल और ऋजु वृत्तियाँ, निःसंकोच और निर्बाध गतियाँ और धधकती ज्वाला-सी अभीप्सा महाकाली की गति हैं। उनका उत्साह अदम्य है, उनकी दृष्टि और संकल्प गरुड़ की उड़ान की तरह उच्च और व्यापक हैं। उनके चरण ऊँचे मार्ग पर तेज़ी से बढ़ते हैं और उनके हाथ प्रहार करने और आड़े वक़्त सहायता करने के लिए फैले रहते हैं। क्योंकि वे भी माँ हैं और उनका प्रेम भी उनके प्रकोप के जितना ही तीव्र है, उनमें गहरी और प्रगाढ़ उत्कट अनुकम्पा है। अगर साधक उन्हें अपनी पूरी शक्ति के साथ हस्तक्षेप करने की अनुमति दे, तो उसे रोकने वाली बाधाएँ या आक्रमण करने वाले शत्रु क्षण-भर में भंगुर

चीज़ों की तरह नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। अगर उनका प्रकोप विरोधियों के लिए भीषण है और उनके दबाव की तीव्रता दुर्बल और भीरु के लिए कष्टदायक है तो महान्, शक्तिशाली और उदात्त लोग उनसे प्रेम करते और उनकी पूजा करते हैं, क्योंकि वे अनुभव करते हैं कि माता के प्रहार उनके भौतिक आधार के विद्रोही तत्त्वों को ठोक-पीट कर सामर्थ्य और पूर्ण सत्य में बदल देते हैं, उनकी टेढ़ी-मेढ़ी और विकृत चीज़ों को हथौड़े मार-मार कर सीधा कर देते हैं और अशुद्ध तथा दोषपूर्ण चीज़ों को निकाल बाहर करते हैं। जो कार्य एक दिन में किया जाता है उसमें उनके बिना शताब्दियाँ लग जातीं। उनके बिना आनन्द विशाल और गम्भीर या मृदु, मधुर और सुन्दर तो हो सकता है पर अपनी तीव्रतम प्रगाढ़ता के प्रज्वलित उल्लास को खो बैठेगा। महाकाली ज्ञान को विजयी शक्ति प्रदान करती हैं, सौन्दर्य और सामञ्जस्य को श्रेष्ठ तथा ऊपर उठती हुई गति देती हैं और पूर्णता के धीमे और कठिन प्रयास को ऐसा वेग देती हैं जो उसकी गति को कई गुना बढ़ा देता है और लम्बे मार्ग को छोटा कर देता है। उन्हें ऐसी किसी चीज़ से सन्तोष नहीं होता जो चरम आनन्द की पराकाष्ठा से, ऊँचे-से-ऊँचे शिखरों से, अत्यधिक उदात्त लक्ष्य से या अत्यन्त विशाल दृश्यावलियों से कम हो। इसीलिए भगवान् की विजयी शक्ति उनके साथ रहती है और उनकी अग्नि और आवेग और द्रुत गति की कृपा से भविष्य की जगह वर्तमान में ही परम सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

महालक्ष्मी

केवल प्रज्ञा और शक्ति ही भगवती माँ के व्यक्त रूप नहीं हैं। उनकी प्रकृति का एक और सूक्ष्म रहस्य है जिसके बिना प्रज्ञा और शक्ति अपूर्ण रहती हैं, और पूर्णता भी पूर्ण नहीं हो सकती। ज्ञान और शक्ति के ऊपर शाश्वत सौन्दर्य का चमत्कार, दिव्य सामञ्जस्यों का अगम रहस्य है, अति सम्मोहक विश्वव्यापी मनोहरता और आकर्षण का जादू है जो वस्तुओं, शक्तियों और सत्ताओं को अपनी ओर आकर्षित करके एक जगह बाँधे रखता है और उन्हें मिलने और एक होने के लिए बाधित करता है ताकि छिपा हुआ आनन्द परदे के पीछे से अपना साज़ बजा सके और उन्हें

अपना ताल-छन्द और अपनी टेक बना सके। यह महालक्ष्मी की शक्ति है और देहधारी सत्ताओं के लिए दिव्य शक्ति का और कोई रूप इससे अधिक आकर्षक नहीं होता। पार्थिव प्रकृति की क्षुद्रता को महेश्वरी इतनी अधिक शान्त, महान् और दूर लग सकती हैं कि वह उनके पास नहीं जा सकती और न उन्हें अपने अन्दर समा सकती है। उसकी निर्बलता को महाकाली इतनी अधिक तेज़ और भयानक लग सकती हैं कि वह उन्हें सह भी न सके, परन्तु महालक्ष्मी की ओर सभी बड़े उल्लास और उत्कण्ठा के साथ मुड़ते हैं क्योंकि वे भगवान् की सम्मोहक मधुरता का जादू फैलाती हैं। उनके पास होने का अर्थ ही है गहन सुख पाना और उन्हें अपने हृदय के अन्दर अनुभव करने का अर्थ है जीवन का आनन्दोल्लास और चमत्कार से भर जाना। महालक्ष्मी से मनोहरता, मोहकता और मृदुता ऐसे ही प्रवाहित होती हैं जैसे सूर्य से प्रकाश। वे जहाँ कहीं अपनी अद्‌भुत दृष्टि को स्थिर करती हैं या जिस पर अपने स्मित की मधुरता डालती हैं वही आत्मा उनकी पकड़ में आकर बन्दी बन जाती है और अथाह आनन्द की गहराई में डुबकी लगाती है। उनके हाथों का स्पर्श चुम्बक की तरह आकर्षक है, और उनका रहस्यमय कोमल प्रभाव मन, प्राण और शरीर को परिष्कृत करता है और जहाँ-जहाँ उनके चरण पड़ते हैं वहाँ-वहाँ सम्मोहक आनन्द की दिव्य धाराएँ बहने लगती हैं।

फिर भी उनकी मोहिनी शक्ति की माँग को पूरा करना या उनकी उपस्थिति को बनाये रखना आसान नहीं है। मन और अन्तरात्मा का सामञ्जस्य और सौन्दर्य, विचारों और भावनाओं का सामञ्जस्य और सौन्दर्य, हर बाहरी गतिविधि और क्रिया में सामञ्जस्य और सौन्दर्य, जीवन और उसके परिवेश का सामञ्जस्य और सौन्दर्य—यही है महालक्ष्मी की माँग। जहाँ सृष्टि के गूढ़, रहस्यमय आनन्द के साथ समस्वरता होती है, जहाँ 'सर्व सुन्दर' के आह्वान का उत्तर मिलता है और भगवान् की ओर उन्मुख बहुत-से व्यक्तियों की मैत्री, एकता और प्रसन्न जीवन-प्रवाह होते हैं, महालक्ष्मी उसी वातावरण में निवास करना स्वीकार करती हैं। जो कुछ कुरूप, क्षुद्र, तुच्छ है, जो दीन, मलिन और कुत्सित है, जो कुछ उजड्ड और असंस्कृत है वह उनके आगमन को रोकता है। जहाँ प्रेम और सौन्दर्य नहीं हैं या जहाँ वे जन्म लेने से इन्कार करते हैं, ऐसे स्थान पर महालक्ष्मी नहीं आतीं और

जहाँ वे घटिया चीज़ों के साथ मिले रहते हैं या उनके कारण भद्दे बन जाते हैं वहाँ से महालक्ष्मी तुरन्त मुँह मोड़ लेती हैं या वहाँ अपना ऐश्वर्य उँडेलने की परवाह नहीं करतीं। अगर वे मनुष्यों के हृदयों में अपने-आपको स्वार्थ, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, असूया और कलह से घिरा हुआ पाती हैं, जब पवित्र पात्र में विश्वासघात, लोभ, कृतघ्नता मिले रहते हैं, यदि वासना की ग्राम्यता और असंस्कृत या अपरिष्कृत कामना भक्ति को भ्रष्ट कर देती हैं तो ऐसे हृदयों में ये सुन्दर करुणामयी देवी क्षण-भर के लिए भी नहीं ठहरतीं, ऐसी अवस्था में वे दिव्य जुगुप्सा से भर जाती हैं और पीछे हट जाती हैं, क्योंकि वे ऐसी नहीं हैं कि आग्रह या संघर्ष करें। या फिर वे अपना मुँह ढक कर इस कड़वे और विषैले आसुरी तत्त्व के बाहर फेंके जाने की प्रतीक्षा करती हैं ताकि वे अपने आह्लादपूर्ण प्रभाव को फिर से स्थापित कर सकें। उन्हें तपस्वी की शुष्कता और कठोरता पसन्द नहीं है और न हृदय के गभीर भावावेगों का दमन या आत्मा और जीवन के सुन्दर भागों का निग्रह ही पसन्द है, क्योंकि वे प्रेम और सौन्दर्य के द्वारा ही मनुष्यों पर भगवान् का जूआ रखती हैं। उनकी परम सृष्टि में जीवन स्वर्गीय कला की एक समृद्ध कृति बन जाता है और सारा अस्तित्व एक पवित्र आनन्द का काव्य। संसार की सारी समृद्धि, सम्पदा एकत्रित करके परम व्यवस्था के लिए इकट्ठी की जाती है। उनके ऐक्य-सम्बन्धी सहज ज्ञान और उनकी आत्मा के उच्छ्वास से सादी-से-सादी और मामूली-से-मामूली चीज़ें भी अद्भुत बन जाती हैं। हृदय में प्रवेश पा जाएँ तो वे प्रज्ञा को आश्चर्य के ऊँचे-से-ऊँचे शिखर पर पहुँचा देती हैं और उसके आगे समस्त ज्ञान से परे आनन्द-समाधि के गुप्त रहस्य खोल देती हैं। वे भक्ति को भगवान् के प्रति तीव्र आकर्षण के साथ जोड़ देती हैं, बल और शक्ति को ऐसा छन्द सिखाती हैं जिससे उनके कर्म समस्वर और सप्रमाण हो जायें। वे पूर्णता पर एक ऐसी मोहिनी छा देती हैं जिससे वह चिरस्थायी हो जाये।

महासरस्वती

महासरस्वती माता की कर्मशक्ति और उनकी पूर्णता और सुव्यवस्था की आत्मा हैं। वे चारों में सबसे छोटी हैं, लेकिन कार्य-सञ्चालन की क्षमता

में सबसे अधिक निष्णात हैं। वे भौतिक प्रकृति के सबसे अधिक निकट हैं। महेश्वरी जगत् की शक्तियों की विशाल रूप-रेखा तैयार करती हैं, महाकाली उनकी शक्ति और वेग को सञ्चालित करती हैं, महालक्ष्मी उनके ताल और लय को प्रकट करती हैं, किन्तु महासरस्वती उनके संगठन और कार्य-सञ्चालन के ब्योरे, विवरण, विभिन्न भागों के पारस्परिक सम्बन्ध और बलों के सफल संयोजन और परिणाम तथा परिपूर्ति की अचूक यथार्थता की अधिष्ठात्री हैं। चीज़ों के बारे में ज्ञान, कला-कौशल और कारीगरी महासरस्वती का अपना क्षेत्र है। उनकी प्रकृति में हैं पूर्ण कार्यकर्ता का अन्तरंग और यथार्थ ज्ञान, सूक्ष्मता और धैर्य, सहज ज्ञानवाला मन, सचेतन हाथ और पारखी दृष्टि, और वे अपने चुने हुए लोगों को ये चीज़ें दे सकती हैं। यह शक्ति बलवान्, अथक, सावधान और निपुण शिल्पी, संगठन-कर्ता, शासक, कारीगर और लोकों का वर्गीकरण करने वाली है। जब वे प्रकृति के रूपान्तर और नव-निर्माण का काम हाथ में लेती हैं तो उनका काम श्रमपूर्ण और सूक्ष्म होता है और हमारे अधीर स्वभाव को बहुधा धीमा और बहुत अधिक लम्बा खिंचता हुआ लगता है, लेकिन वह स्थायी, पूर्ण और निर्दोष होता है। क्योंकि उनके काम का संकल्प अतिसतर्क, तन्द्राहीन और अश्रान्त होता है। वे हमारे ऊपर झुक कर हर छोटे-से-छोटे ब्योरे को देखती हैं और छूती हैं, हर छोटे-से-छोटे दोष, दरार, मरोड़ या अपूर्णता को खोज लेती हैं और जो हो चुका है और जो करना बाक़ी है उन दोनों के बारे में विचार करके ठीक-ठीक मूल्यांकन करती हैं। उनकी दृष्टि के लिए कोई चीज़ अतितुच्छ या प्रत्यक्ष रूप में नगण्य नहीं है। कोई भी स्पर्शातीत, छद्मवेशी, या छिपी हुई चीज़ उनसे बच नहीं सकती। वे हर एक भाग को बार-बार साँचे में ढालती हैं और तब तक मेहनत करती रहती हैं जब तक वह अपने उचित रूप और सम्पूर्ण में अपने स्थान को पा न ले, और अपने नियत प्रयोजन को सिद्ध न कर ले। लगातार मेहनत के साथ चीज़ों को व्यवस्थित और पुनर्व्यवस्थित करते हुए वे सभी प्रयोजनों और उन्हें पूरा करने के तरीक़ों पर एक साथ नज़र रखती हैं और उनका सहज ज्ञान जानता है कि किसे चुनना और किसे छोड़ना चाहिये और वे सफलता के साथ उचित यन्त्र, उचित समय, उचित परिस्थितियों और उचित प्रक्रिया को चुनती हैं। वे असावधानी, उपेक्षा और अकर्मण्यता से घृणा

करती हैं। लापरवाही, टाल-मटोल के साथ, बेगार टालना या जल्दबाज़ी में किया गया काम, फूहड़पन या 'चल जायेगा' की वृत्ति और एक की जगह कुछ दूसरा ही कर बैठना, साधन और शक्ति का मिथ्या आयोजन और दुरुपयोग, काम न करना या अधूरा छोड़ देना उनके स्वभाव के लिए अप्रीतिकर और विजातीय है। जब उनका काम पूरा होता है तो कहीं कोई भूल नहीं रहती, काम का कोई भाग ग़लत जगह पर, छूटा हुआ या दोषपूर्ण अवस्था में नहीं रहता, सब कुछ ठोस, यथार्थ, पूर्ण और प्रशंसनीय होता है। उन्हें पूर्ण पूर्णता से कम पर सन्तोष नहीं होता और अगर उन्हें सृष्टि की पूर्णता के लिए अनन्त काल तक परिश्रम करने की ज़रूरत हो तो वे उसके लिए भी तैयार रहती हैं। इसलिए माता की सभी शक्तियों में वे ही मनुष्य और उसकी हज़ारों अपूर्णताओं के साथ सबसे अधिक धीरज के साथ लगी रहती हैं।

अगर हम अपने संकल्प पर एकमन हों, निष्कपट और सत्यनिष्ठ रहें तो उन कृपालु, सदा मुस्कुराने वाली, साथ रह कर सहायता करने वाली, आसानी से मुँह न मोड़ने वाली, अनुत्साहित न होने वाली, बार-बार असफल होने पर भी लगी रहने वाली माता के हाथ हमें पग-पग पर सहारा देते हैं। वे दुविधा-भरे मन को नहीं सहतीं, ढोंग, पाखण्ड, आत्मवञ्चना और बहानेबाज़ी के प्रति उनका मर्मभेदी व्यंग्य निर्मम होता है। आवश्यकता के समय वे हमारी माँ हैं, कठिनाइयों के समय मित्र हैं, स्थिर और शान्त रूप से सलाहकार और परामर्शदाता हैं। वे अपनी ज्योतिर्मयी मुस्कान से हमारी उदासी, हमारे उद्वेग और अवसाद के बादलों को तितर-बितर कर देती हैं। वे हमेशा याद दिलाती रहती हैं कि उनकी सहायता हमारे साथ है। वे शाश्वत सूर्य के प्रकाश की ओर इशारा करती हैं और दृढ़ता, निश्चलता और धैर्यपूर्वक हमें गभीर तथा उच्चतर प्रकृति की ओर सतत प्रेरित करती रहती हैं।

माता की अन्य शक्तियों के सभी कार्य अपनी पूर्णता के लिए उनका सहारा लेते हैं क्योंकि वे ही भौतिक आधार को सुनिश्चित बनाती हैं, ब्योरे की सामग्री की व्यवस्था करती हैं, निर्माण के ढाँचे को खड़ा करके उसमें कीलें जड़ कर उसे मज़बूत बनाती हैं।

तुम्हारे अन्दर तीन चीज़ें अवश्य होनी चाहियें

अगर तुम यह रूपान्तर चाहते हो तो अपने-आपको बिना मीन-मेख या प्रतिरोध के माता और उनकी शक्तियों के हाथों में सौंप दो। तुम्हारे अन्दर तीन चीज़ें होनी चाहियें — सचेतनता, नम्यता और बिना शर्त समर्पण। तुम्हें अपने मन, अन्तरात्मा, हृदय, प्राण और शरीर के कोषाणुओं तक में माता का, उनकी शक्ति का, उनकी क्रिया के बारे में सचेतन ज्ञान होना चाहिये। यद्यपि वे तुम्हारी अज्ञानावस्था में, अचेतन भागों और क्षणों में भी काम कर सकती और करती हैं लेकिन यह काम वैसा नहीं होता जैसा कि तब होता है जब तुम उनके साथ जीवित-जाग्रत् सम्पर्क में होते हो। तुम्हारी पूरी प्रकृति उनके स्पर्श के प्रति नमनीय होनी चाहिये, उसे अपने-आपसे सन्तुष्ट अज्ञानी मन की तरह, जो बोध और परिवर्तन का शत्रु है, प्रश्न, तर्क-कुतर्क और शंकाएँ नहीं करनी चाहियें। उसे हठीला बन कर हर भागवत प्रभाव का अदम्य कामना और अशुभेच्छा के साथ विरोध करने वाले मानव प्राण की तरह अपनी गतिविधि के लिए दुराग्रह नहीं करना चाहिये। उसे मनुष्य की उस भौतिक चेतना की तरह निर्बल, जड़ और तमोग्रस्त नहीं होना चाहिये जो अपनी क्षुद्रता और अन्धकार से मिलने वाले सुख से चिपट कर, अपनी निर्जीव दिनचर्या, शुष्क प्रमाद या जड़ तन्द्रा में विघ्न डालने वाले हर स्पर्श के विरुद्ध चिल्ला पड़ती है। तुम्हारी अन्दर और बाहर की सत्ता का बिना शर्त समर्पण तुम्हारी प्रकृति के सभी भागों में यह नमनीयता ले आयेगा। ऊपर से नीचे प्रवाहित होते हुए प्रज्ञा और प्रकाश, शक्ति, सामञ्जस्य और सौन्दर्य तथा पूर्णता के प्रति हमेशा खुले रहने से तुम्हारे अन्दर हर जगह चेतना जाग उठेगी। यहाँ तक कि शरीर भी सचेतन हो जायेगा और उसकी चेतना पहले की तरह अतिमानसिक, अतिचेतन शक्ति से छिपी न रह कर उसके साथ एक हो जायेगी, उसकी सारी शक्तियों को ऊपर, नीचे और चारों ओर फैलती हुई अनुभव करेगी और वह परम प्रेम और आनन्द की अनुभूति से पुलकित हो उठेगा।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १४-२५ **श्रीअरविन्द**

बारह गुण

१९ जनवरी १९७२

पिछली बार मैंने तुमसे कहा था कि मैंने बारह गुणों के बारे में जिस पर्चे पर लिखा था उसे खोज रही थी। *(श्रीमाँ एक काग़ज़ निकालती हैं)* लो यह रहा वह, किसी ने मेरे लिए ढूँढ़ लिया इसे।

१. सच्चाई-निष्कपटता	२. विनम्रता	३. कृतज्ञता	४. अध्यवसाय
५. अभीप्सा	६. ग्रहणशीलता	७. प्रगति	८. साहस
९. अच्छाई	१०. उदारता	११. समता	१२. शान्ति

पहले आठ गुण प्रभु के प्रति व्यक्ति के मनोभाव से सम्बन्ध रखते हैं और अन्तिम चार मानवता के प्रति व्यक्ति के मनोभाव से।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से

सच्चाई-निष्कपटता

पहली बात है, अपने-आपको धोखा न देना। व्यक्ति जानता है कि भगवान् को धोखा नहीं दिया जा सकता; असुरों में सबसे चतुर भी भगवान् को धोखा नहीं दे सकता। यह सब समझ लेने के बाद भी, हम देखते हैं कि व्यक्ति बहुधा अपने जीवन में दिन-भर बिना जाने, निरायास, लगभग यन्त्रवत् अपने-आपको धोखा देने की कोशिश करता है। व्यक्ति जो कुछ करता है उसकी, अपने शब्दों की और अपनी क्रियाओं की हमेशा ही अनुकूल व्याख्या कर लेता है। पहले यही होता है। मैं यहाँ स्पष्ट दीखने वाली चीज़ों की बात नहीं कर रही, जैसे लड़-झगड़ कर आदमी कहता है : "यह दूसरे का दोष है।" मैं दैनिक जीवन की छोटी-छोटी चीज़ों की बात कर रही हूँ...

मैं इसी को सच्चा या निष्कपट होना कहती हूँ। जब तुम किसी के साथ हो और निष्कपट हो, तो तुरन्त तुम्हारी प्रतिक्रिया यही होनी चाहिये कि तुम ठीक चीज़ करो, भले तुम जिसके साथ हो वह ठीक चीज़ न भी करे। सबसे सामान्य उदाहरण ले लो : कोई नाराज़ होता है, उसे चोट पहुँचाने वाली बातें कहने की जगह तुम चुप रहते हो, स्थिर और शान्त रहते हो। तुम्हें उसके ग़ुस्से की छूत नहीं लगती। ज़रा अपनी ओर देखने से ही तुम्हें पता लग जायेगा कि यह आसान है या नहीं। यह बिलकुल प्रारम्भिक चीज़ है। यह जानने के लिए कि तुम सच्चे और निष्कपट हो या नहीं, बहुत-ही छोटा-सा आरम्भ है। और मैं उन लोगों की बात नहीं कर रही जो हर छूत के, यहाँ तक कि भद्दे मज़ाकों के भी शिकार हो जाते हैं; मैं उनकी बात भी नहीं कर रही जो वही मूर्खता करते हैं जो दूसरे करते हैं।

मैं तुमसे कहती हूँ : अगर तुम अपने-आपको पैनी दृष्टि से टटोलो तो तुम अपने सामान्य मनोभाव में निष्कपट होने की कोशिश करते हुए भी अपने अन्दर सैकड़ों कपट और कुटिलताएँ देखोगे। तुम देखोगे कि यह कितना कठिन है।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ५, पृ. ६-७

पूर्णतः सच्चा होने के लिए यह आवश्यक है कि कोई पसन्दगी, कोई कामना, कोई आकर्षण, कोई नापसन्दगी, कोई सहानुभूति या विद्वेष, कोई आसक्ति, कोई विकर्षण न हो। हमें वस्तुओं का एक पूर्ण, सर्वांगीण अन्तर्दर्शन प्राप्त हो जिसमें प्रत्येक वस्तु अपने स्थान पर हो और सभी वस्तुओं के प्रति हमारा एक ही मनोभाव हो : सत्य-दर्शन का मनोभाव।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ८, पृ. ४७४

सच्चाई का अर्थ है, सत्ता की सभी गतिविधियों को अभी तक प्राप्त उच्चतम चेतना और उपलब्धि तक उठाना।

सच्चाई समस्त सत्ता के सभी भागों और क्रिया-कलापों को केन्द्रीय 'भागवत इच्छा' के चारों ओर एक और समस्वर करने की माँग करती है।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १४, पृ. ७१

जब कभी तुम्हारे अन्दर सच्चाई होती है तब तुम देखते हो कि सहायता, पथ-प्रदर्शन, कृपा-शक्ति सर्वदा तुम्हें उत्तर देने के लिए मौजूद हैं और तुम फिर जल्दी ही अपनी भूल सुधार लेते हो।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ३, पृ. २०५

सरल निष्कपटता

समस्त प्रगति का आरम्भ

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

विनम्रता

विनम्र होने का ठीक और ग़लत तरीक़ा क्या है?

यह बहुत सरल है। जब लोगों से "विनम्र होने" के लिए कहा जाता है तो वे तुरन्त "दूसरे लोगों के सामने नम्र" होने की बात सोच लेते हैं, यह नम्रता ग़लत है। सच्ची नम्रता भगवान् के प्रति नम्रता है। यानी, एक यथार्थ, ठीक-ठीक, **जीता-जागता** भाव कि हम भगवान् के बिना कुछ भी नहीं हैं, कुछ भी नहीं कर सकते और कुछ भी नहीं समझ सकते, कि अगर हम बहुत ही अधिक तथा विरल रूप में, बुद्धिमान् हैं फिर भी यह भागवत 'चेतना' के सामने कुछ भी नहीं है और यह भाव हमेशा बना रहना चाहिये क्योंकि तब ग्रहणशीलता का सच्चा भाव हमेशा बना रह सकता है—एक ऐसी विनम्र ग्रहणशीलता का जो भगवान् के सामने व्यक्तिगत आत्म-प्रदर्शन नहीं करती।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ५, पृ. ५०-५१

विनम्रता (दूर्बा)

अपनी सफलता में प्रशंसनीय

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

कृतज्ञता

... एक दूसरी क्रिया है जो भक्ति के साथ निरन्तर बनी रहनी चाहिये...। इस प्रकार की कृतज्ञता का भाव कि भगवान् का अस्तित्व है; चमत्कारपूर्ण कृतज्ञता की यह भावना जो वास्तव में इस तथ्य के कारण ही तुम्हें महान् हर्ष से भर देती है कि भगवान् हैं, विश्व में कोई वस्तु है जो भगवान् है, ठीक वह भयंकरता ही नहीं है जिसे हम देखते हैं, भगवान् हैं, भगवान् विद्यमान हैं। और जब-जब अत्यन्त मामूली चीज़ भी तुम्हें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में, दिव्य सत्ता के इस उच्च 'सत्य' के सम्पर्क में ला देती है, तुम्हारा हृदय इतने तीव्र, इतने अलौकिक हर्ष से, एक ऐसी कृतज्ञता से भर जाता है जिसमें मानों अन्य सब चीज़ों की अपेक्षा सबसे अधिक आनन्दपूर्ण रस होता है। ऐसी कोई चीज़ नहीं जो तुम्हें कृतज्ञता से प्राप्त हर्ष के समान हर्ष प्रदान करे। हम एक पक्षी को गाते हुए सुनते हैं, एक सुन्दर-सा पुष्प देखते हैं, एक नन्हें से बच्चे को निहारते हैं, उदारता के एक कार्य की ओर दृष्टिपात करते हैं, एक आकर्षक वाक्य पढ़ते हैं, अस्तोन्मुख रवि को देखते हैं, इसका महत्त्व नहीं कि वह क्या चीज़ है, एकाएक यह चीज़ तुम्हें अभिभूत कर देती है, इस प्रकार का भावातिरेक—निस्सन्देह, इतना गभीर, इतना तीव्र—कि संसार भगवान् को अभिव्यक्त कर रहा है, कि जगत् के पीछे कोई वस्तु है जो भगवान् है। **'श्रीमातृवाणी'** खण्ड ८, पृ. ४८-४९

हमेशा हमारे हृदय में कृतज्ञता की ऊष्माभरी, मधुर और उज्ज्वल पवित्र लौ जलती रहनी चाहिये ताकि वह सारे अहंकार और समस्त अन्धकार को विलीन कर दे; परम प्रभु की उस 'कृपा' के लिए कृतज्ञता की लौ जो साधक को उसके लक्ष्य की ओर बढ़ाये लिये जाती है—और जितना अधिक वह कृतज्ञ होगा, 'कृपा' के इस कार्य को समझेगा और उसके लिए धन्यवाद से भर उठेगा, उतना अधिक मार्ग छोटा होगा।

"White Roses" (२६-६-१९६४ का सन्देश)

कृतज्ञता

तुम्हीं सभी बन्द द्वारों को खोल देती और रक्षण करने वाली भागवत कृपा को अन्दर प्रवेश करने देती हो।

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

अध्यवसाय

जब तक तुम एक ही चीज़ को, जब ज़रूरत हो, हज़ारों बार फिर-फिर आरम्भ करने का संकल्प न करो... जानते हो, लोग निराश होकर मेरे पास आते हैं और कहते हैं : "मैंने तो समझा था कि यह हो चुका, पर मुझे फिर से आरम्भ करना होगा!" और यदि उनसे कहा जाता है : "परन्तु यह तो कुछ नहीं, तुम्हें शायद फिर से सौ बार, दो सौ बार, हज़ार बार प्रारम्भ करना होगा; तुम एक पग आगे बढ़ते हो और समझते हो कि सुरक्षित हो गये, परन्तु सर्वदा कोई चीज़ बनी रहेगी जो उसी कठिनाई को थोड़े दिन बाद वापस ले आयेगी। तुम समझते हो कि तुमने समस्या हल कर ली, तुम्हें उसे फिर एक बार हल करना होगा; वह तुम्हारे सामने ऐसे उपस्थित होगी जो देखने में तो ज़रा भिन्न होगी, पर होगी वही समस्या", और यदि तुमने निश्चय नहीं किया है कि : "यदि वह लाखों बार वापस आये फिर भी मैं उसे लाखों बार हल करूँगा, पर इसे समाप्त करके ही छोड़ूँगा", तो हाँ, तुम योग नहीं कर सकोगे। यह एकदम अपरिहार्य है।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ८, पृ. ५०

अध्यवसाय द्वारा ही व्यक्ति कठिनाइयों को जीत सकता है, उनसे भाग कर नहीं। जो डटा रहे उसका जीतना निश्चित है। विजय सबसे अधिक सहनशील को प्राप्त होती है। हमेशा अपना अच्छे-से-अच्छा करो और परिणामों को भगवान् देख लेंगे।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १४, पृ. १८०

अध्यवसाय

एकदम अन्त तक जाने का निश्चय

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

अभीप्सा

यह (अभीप्सा) है उच्चतर वस्तुओं के लिए—भगवान् के लिए—सत्ता का आह्वान, क्योंकि सभी कुछ उच्चतर या 'भागवत चेतना' का ही है।

जड़-भौतिक में प्रगतिशील चिन्तक मन के प्रकट होने तक क्रम-विकास पर प्रभाव पड़ा है, लेकिन वह पड़ा है प्रकृति की यान्त्रिक क्रियावली द्वारा, यानी अवचेतन या अन्तस्तलीय रूप में—क्योंकि उसमें अपने-आपको जानने की अभीप्सा, आशय, संकल्प या किसी सत्ता की खोज नहीं थी... मनुष्य जब आया तो उसने देखा कि उसकी चेतना से ऊँची चेतना की एक स्थिति हो सकती है; उसके मन और प्राण में क्रम-विकासात्मक उद्दीपन है, उसके अन्दर अपना अतिक्रमण करने की अभीप्सा है जो स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर है और उसमें बसी हुई है...। **CWSA** खण्ड २९, पृ. ५६ खण्ड २२, पृ. ८७५-७६

शब्दों के परे, विचारों के ऊपर तीव्र अभीप्सा की ज्वाला को हमेशा निष्कम्प और उज्ज्वल होकर जलते रहना चाहिये।

*

सच्ची अभीप्सा का ठीक-ठीक अर्थ क्या है?

ऐसी अभीप्सा जिसमें किन्हीं पक्षपातभरे और अहंकारपूर्ण हिसाब-किताब का मिश्रण न हो। **'श्रीमातृवाणी'** खण्ड १४, पृ. ८१, ७९

अगर तुम सचेतन अभीप्सा की अवस्था में हो, बहुत सच्चे हो तो बस, तुम्हारे आस-पास की सभी चीज़ें, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, अभीप्सा में मदद करने के लिए सुव्यवस्थित कर दी जायेंगी, यानी, या तो तुमसे प्रगति करवाने के लिए, किसी नयी चीज़ के सम्पर्क में लाने के लिए, या फिर तुम्हारे स्वभाव में से किसी ऐसी चीज़ को उखाड़ फेंकने में तुम्हारी मदद करेंगी जिसे विलुप्त हो जाना चाहिये। यह काफ़ी अद्भुत है। अगर तुम सचमुच अभीप्सा की तीव्रता की अवस्था में होओ तो ऐसी कोई परिस्थिति

नहीं जो इस अभीप्सा को चरितार्थ करने के लिए तुम्हारी सहायता करने न आये। हर चीज़ मदद करने आती है, हर चीज़, मानों कोई ऐसी पूर्ण और निरपेक्ष चेतना विद्यमान है जो तुम्हारे चारों ओर सभी चीज़ों को संगठित कर रही है।... **'श्रीमातृवाणी'** खण्ड ६, पृ. २०१

अभीप्सा

असंख्य, दुराग्रही, अपने-आप को बिना थके दोहराती रहती है।

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

ग्रहणशीलता

ग्रहणशीलता—भागवत शक्ति को ग्रहण करने की और उसकी तथा उसके अन्दर श्रीमाँ की उपस्थिति को अनुभव करने की शक्ति तथा उसे कर्म करने देना, अपनी दृष्टि, संकल्प और कर्म को परिचालित करने देना। **CWSA** खण्ड २९, पृ. २६६

मेरा प्रेम हमेशा तुम्हारे साथ है; तो अगर तुम उसे अनुभव न करो तो इसका अर्थ है कि तुम उसे ग्रहण करने में समर्थ नहीं हो। यह तुम्हारी ग्रहणशीलता की कमी है और ग्रहणशीलता को बढ़ाना चाहिये; इसके लिए तुम्हें अपने-आपको खोलना चाहिये और तुम अपने-आपको तभी खोलते हो जब **अपने-आपको** देते हो। निश्चय ही तुम 'भागवत प्रेम' और शक्तियों को न्यूनाधिक सचेतन रूप से अपनी ओर खींचने का प्रयास कर रहे हो। यह तरीक़ा बुरा है। बिना लेखा-जोखा किये, बदले में किसी चीज़ की आशा किये बिना अपने-आपको दे दो, तब तुम पाने में समर्थ होओगे।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १४, पृ. १६२

माँ, ग्रहणशीलता किस बात पर निर्भर करती है?

इसका पहला आधार है सच्चाई—व्यक्ति सचमुच ग्रहण करना चाहता है या

नहीं—और फिर... हाँ, मेरे विचार में इसके लिए मुख्य वस्तुएँ हैं सच्चाई और नम्रता। जितना घमण्ड तुम्हारे हृदय के द्वार बन्द कर देता है उतना कोई और वस्तु नहीं करती। जब तुम अपने में सन्तुष्ट रहते हो, तो यह तुम्हारे अन्दर का अहं ही होता है जो तुम्हें यह मानने ही नहीं देता कि तुम्हारे अन्दर भी कोई कमी है, कि तुम भी ग़लतियाँ करते हो, कि तुम भी अधूरे हो, अपूर्ण हो, कि तुम... जानते हो, तुम्हारी प्रकृति में कोई ऐसी चीज़ मौजूद है जो इस प्रकार कठोर पड़ जाती है, जो अपना दोष स्वीकार करना नहीं चाहती—यही चीज़ तुम्हें उच्चतर वस्तु को ग्रहण करने से रोकती है। बहरहाल, इस अनुभव को प्राप्त करने के लिए तुम कोशिश कर सकते हो। यदि तुम संकल्प-शक्ति के बल पर अपनी सत्ता के एक छोटे-से भाग से भी यह कहलवा सको कि "ओह, हाँ, हाँ, यह मेरी भूल थी, मुझे ऐसा नहीं होना चाहिये था, मुझे ऐसा करना और सोचना नहीं चाहिये था, हाँ, यह मेरा दोष है", यदि तुम उससे यह स्वीकार करा सको तो शुरू-शुरू में तो, जैसा कि मैंने अभी-अभी कहा, तुम्हें इससे कष्ट होगा, पर यदि तुम इस पर अड़े रहो, जब तक कि वह पूरी तरह स्वीकृत न हो जाये, तो वह भाग तत्काल ही खुल जायेगा—वह खुल जायेगा और प्रकाश का पुञ्ज उसके अन्दर प्रवेश कर जायेगा, और तब तुम बाद में इतने प्रसन्न और आनन्दित हो उठोगे कि तुम अपने से पूछोगे: "आख़िर क्यों, मैं इतने समय तक इसका प्रतिरोध कर रहा था? कैसा मूर्ख था मैं!"

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ६, पृ. १३३-३४

ग्रहणशीलता

'भागवत संकल्प' के प्रति सचेतन तथा उसे समर्पित

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

प्रगति

आन्तरिक प्रगति की पहली शर्त है, तुम्हारी प्रकृति के किसी भी भाग में जो भी ग़लत गतिविधि या क्रिया हो, उसे स्वीकार कर लेना—वह ग़लत विचार, ग़लत भावना, ग़लत वाणी, ग़लत क्रिया—कुछ भी हो सकती है। और ग़लत का अर्थ है—जो कुछ सत्य, उच्चतर चेतना और उच्चतर आत्मा, भगवान् के पथ से हट जाये। एक बार उस ग़लत गतिविधि को पहचान लो तो स्वीकार कर लो, उस पर लीपा-पोती मत करो, अपनी सफ़ाई मत दो,—उसे परम प्रभु को समर्पित कर दो कि उनका 'प्रकाश' और उनकी 'कृपा' उतर कर उसके स्थान पर सत्य-'चेतना' की उचित क्रिया को प्रतिष्ठित कर दें।

CWSA खण्ड २९, पृ. १३१ **श्रीअरविन्द**

प्रगति सृष्टि में भागवत प्रभाव का चिह्न है।

*

पार्थिव जीवन का उद्देश्य है प्रगति। अगर तुम प्रगति करना बन्द कर दो तो तुम मर जाओगे। प्रत्येक क्षण जो तुम प्रगति किये बिना गुज़ारते हो तुम्हारी क़ब्र की ओर एक और क़दम होता है।

*

जिस क्षण तुम सन्तुष्ट हो जाते हो और किसी चीज़ के लिए अभीप्सा नहीं करते, तुम मरना शुरू कर देते हो। जीवन गति है, जीवन प्रयास है, वह आगे कूच कर रहा है, भावी अन्तःप्रकाशों और उपलब्धियों की ओर चढ़ रहा है। आराम करना चाहने से बढ़ कर ख़तरनाक और कुछ नहीं है।

*

तुम्हें हमेशा कुछ सीखना होता है, कुछ प्रगति करनी होती है और हर स्थिति में हम सीखने और प्रगति करने का अवसर पा सकते हैं।

*

प्रगति : हर क्षण मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए जो कुछ तुम हो और जो कुछ तुम्हारे पास है उसे छोड़ने के लिए तैयार रहना।

*

सच्ची प्रगति है हमेशा 'भगवान्' के अधिक निकट आना।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १५, पृ. ८३, ८५

प्रगति (सदाबहार)

वह कारण जिसके लिए हम धरती पर हैं

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

साहस

... भय एक प्रकार की अपवित्रता है, सबसे बड़ी अपवित्रताओं में से एक है, उनमें से एक जो सीधे उन भगवद्विरोधी शक्तियों से आती हैं जो पृथ्वी पर भागवत कार्य को नष्ट कर देना चाहती हैं; और जो लोग सचमुच योग करना चाहते हैं उनका सबसे पहला कर्तव्य है—अपनी सारी शक्ति, सारी सच्चाई तथा जितनी सहिष्णुता वे धारण कर सकें उस सबके साथ अपनी चेतना में से भय की छाया तक को निकाल फेंकना। मार्ग पर चलने के लिए हमें निर्भीक होना होगा, और कभी उस क्षुद्र, तुच्छ, दुर्बल, निकृष्ट, अपनी ही ओर सिकुड़ जाने के भाव को, जो कि भय है, प्रश्रय नहीं देना चाहिये। एक अदम्य साहस, एक पूर्ण निष्ठा और आत्मदान, जो इतना सच्चा हो कि मनुष्य न तो हिसाब लगाये, न मोल-तोल करे, पाने की भावना से न दे, संरक्षण पाने की भावना से निर्भरशील न हो—ऐसी श्रद्धा न रखे जो प्रमाण माँगती हो—बस, यही चीज़ पथ पर चलने के लिए अनिवार्य है, और बस यही चीज़ है जो वास्तव में तुम्हें सभी ख़तरों में सुरक्षा प्रदान कर सकती है।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ८, पृ. ३१४-१५

सर्वांगीण साहस : चाहे कोई क्षेत्र हो, चाहे जो संकट हो, मनोवृत्ति एक ही रहती है—स्थिर और आश्वस्त।

*

अपने दोषों को पहचानना श्रेष्ठतम साहस है।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १४, पृ. १८७, १८८

मुझे याद है कि एक बार हमने एक परिपूर्णता के रूप में साहस की चर्चा की थी... परन्तु यह एक ऐसा साहस है जिसमें एक सर्वोच्च साहसिक कार्य का रस होता है। और सर्वोच्च साहसिकता का यह रस है अभीप्सा—वह अभीप्सा जो तुम्हें पूर्णतः अपने अधिकार में कर लेती है और बिना कोई हिसाब लगाये, बिना कुछ बचाये और पीछे हट आने की किसी सम्भावना के बिना, तुम्हें भागवत खोज के महान् साहसिक कार्य में, दिव्य मिलन के महान् साहसिक कर्म में, और 'भागवत उपलब्धि' के और भी महत्तर साहसिक कार्य में फेंक देती है; मनुष्य बिना पीछे ताके और एक क्षण भी यह पूछे बिना कि "क्या होने वाला है" अपने-आपको इस 'साहसिक कार्य' में, झोंक देता है। क्योंकि कोई यदि पूछता है कि क्या होने वाला है तो वह कभी प्रारम्भ ही नहीं करता, वह सदा धरती से चिपका रहता है, वहाँ, गड़ा रहता है, किसी वस्तु को खो देने, अपना सन्तुलन खो देने के भय से त्रस्त रहता है।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ८, पृ. ४९

प्रगति धीमी हो सकती है, पतन बार-बार हो सकते हैं, परन्तु यदि साहसपूर्ण संकल्प बनाये रखा जाये, तो यह निश्चित है कि हम एक दिन विजयी होंगे और यह देखेंगे कि सभी कठिनाइयाँ सत्य की जाज्वल्यमान चेतना के सामने गल गयी या विलीन हो गयी हैं।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १२, पृ. ८

साहस

निर्भीक, वह सभी ख़तरों का सामना करता है

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

अच्छाई

मैंने बहुत बार लोगों को यह कहते सुना है : "ओह! अब जब मैं अच्छा बनने की कोशिश करता हूँ तो ऐसा लगता है कि सब मेरे साथ दुष्टतापूर्ण व्यवहार करते हैं!" लेकिन यह ख़ास तुम्हें यह सिखाने के लिए होता है कि स्वार्थ-भरे उद्देश्य के साथ अच्छा नहीं बनना चाहिये, इसलिए भी अच्छा नहीं बनना चाहिये कि दूसरे तुम्हारे साथ अच्छा व्यवहार करें —अच्छा बनने के लिए अच्छा बनना चाहिये।

हमेशा एक ही पाठ सीखना होता है : जितना अच्छा कर सकते हो करते चलो, जितना कर सको, उससे अधिक अच्छा करो; लेकिन परिणाम की आशा के बिना, परिणाम के बारे में सोचे बिना। यह मनोवृत्ति, अपने अच्छे कार्य के लिए पुरस्कार की आशा करना—अच्छा इसलिए बनना कि हम सोचते हैं कि उससे जीवन अधिक सरल होगा—अच्छे कार्य के सारे मूल्य को घटा देता है।

अच्छाई के प्रेम के कारण अच्छा बनना चाहिये, ईमानदारी के प्रेम के कारण ईमानदार होना चाहिये, पवित्रता के प्रेम के कारण पवित्र होना चाहिये और निःस्वार्थता के प्रेम के कारण निःस्वार्थ होना चाहिये; तब तुम राह पर आगे बढ़ोगे, यह बात निश्चित है। **'श्रीमातृवाणी'** खण्ड ३, पृ. २९६

मुँह में मिठाई की अपेक्षा अच्छा कार्य हृदय के लिए ज़्यादा मीठा होता है। जो दिन अच्छा काम किये बिना बीतता है वह बिना आत्मा का दिन होता है। **'श्रीमातृवाणी'** खण्ड १५, पृ. २५१

तुम्हें अपने हृदय में निरन्तर सद्भावना और प्रेम रखना चाहिये और उन्हें सभी के ऊपर शान्ति और समता के साथ प्रवाहित होने देना चाहिये।

भगवान् से प्रेम करने और धरती पर 'उनकी' सेवा करने का सबसे अच्छा तरीक़ा है अथक, स्पष्टदर्शी और व्यापक शुभ-चिन्ता जो सभी व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं से मुक्त हो। **'श्रीमातृवाणी'** खण्ड १४, पृ. २०६-०७

सद्भावना

देखने में विनम्र, कोई दिखावा नहीं करती, लेकिन हमेशा उपयोगी होने के लिए तत्पर रहती है

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

उदारता

"सज्जनता और उदारता आत्मा के सूक्ष्म आकाश हैं; इनके बिना व्यक्ति काल-कोठरी में पड़ा कीड़ा ही दिखायी देता है।" **श्रीअरविन्द**

श्रीमाँ समझाती हैं : सज्जनता का अर्थ है समस्त वैयक्तिक हिसाब-किताब को अस्वीकार कर देना।

उदारता का अर्थ है दूसरों के सन्तोष में अपना सन्तोष पाना।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १०, पृ. ३२७

महालक्ष्मी के विषय में श्रीअरविन्द यहाँ कहते हैं : "वे सभी चीज़ें जो दीन-हीन होती हैं... उनके आगमन को रोकती हैं"?

हाँ, वह सब जो दरिद्र है, उदारता से रहित, उत्साह की प्रखरता से शून्य, प्राचुर्य से रहित, आन्तरिक समृद्धि से शून्य; जो कुछ सूखा, ठण्डा, गुड़ी-मुड़ी होता है वह सब महालक्ष्मी के आगमन को रोकता है। यहाँ प्रश्न स्थूल धन का नहीं है, समझे! एक अत्यन्त धनी व्यक्ति भी महालक्ष्मी की दृष्टि में भयानक रूप से दरिद्र हो सकता है। और एक बहुत दरिद्र व्यक्ति बहुत धनी हो सकता है यदि उसका हृदय उदार हो।...

दरिद्र मनुष्य वह व्यक्ति है जिसमें कोई गुण न हो, कोई शक्ति, कोई बल-सामर्थ्य, कोई उदार-भाव न हो। वह एक दुःखी, अभागा मनुष्य भी होता है। परन्तु कोई व्यक्ति केवल तभी दुःखी होता है जब वह उदार नहीं होता—यदि किसी के अन्दर ऐसा उदार स्वभाव हो जो बिना हिसाब लगाये अपने-आपको दे देता हो, तो वह कभी दुःखी नहीं होता। जो लोग स्वयं अपने-आप पर ही केन्द्रित होते हैं और जो सर्वदा अपनी ओर ही वस्तुओं को खींचना चाहते हैं, जो चीज़ों को और जगत् को अपने ही नज़रिये से देखते हैं—केवल ये ही लोग दुःखी होते हैं। परन्तु जब कोई अपने-आपको उदारतापूर्वक, हिसाब लगाये बिना, दे देता है तो वह कभी दुःखी नहीं होता—कभी नहीं। जो व्यक्ति लेना चाहता है बस वही दुःखी होता है; जो अपने-आपको दे देता है वह कभी वैसा नहीं होता।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ४, पृ. ४८५-८६

मैं यहाँ नैतिक उदारता की चर्चा करना चाहती हूँ। उदाहरणार्थ, जब अपना कोई साथी सफल हो तो प्रसन्नता अनुभव करनी चाहिये। साहस के, निःस्वार्थ भाव के, उच्च त्याग के कार्यों में एक प्रकार का सौन्दर्य होता है जो हमें आनन्द प्रदान करता है। यह कहा जा सकता है कि नैतिक उदारता का तात्पर्य है दूसरों के यथार्थ मूल्य और श्रेष्ठता को पहचानने में समर्थ होना।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ४, पृ. ३६-३७

उदारता

बिना किसी मोल-तोल के अपने-आपको
निरन्तर देती ही रहती है

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

समता

समता का अर्थ है अचञ्चल और स्थिर मन तथा प्राण; इसका अर्थ है घटित होने वाली या कही गयी या तुम्हारे प्रति की गयी वस्तुओं से अछूता रहना, विचलित न होना, बल्कि उनकी ओर सीधी नज़र से देखना, व्यक्तिगत भावना द्वारा उत्पन्न विकृतियों से मुक्त रहना, और उस चीज़ को समझने का प्रयास करना जो उनके पीछे विद्यमान है, यह समझना कि वे क्यों घटित होती हैं, उनसे क्या शिक्षा लेनी चाहिये, हमारे अन्दर ऐसी कौन-सी चीज़ है जिसके विरुद्ध वे फेंकी गयी हैं और उनसे कौन-सा आन्तरिक लाभ उठाया जा सकता है या उनकी सहायता से कौन-सी प्रगति की जा सकती है। इसका अर्थ है प्राणिक क्रियाओं के ऊपर आत्म-प्रभुत्व,—क्रोध, असहिष्णुता और गर्व तथा साथ ही कामना और अन्य चीज़ें—इन्हें अपनी भावनात्मक सत्ता पर अधिकार नहीं जमाने देना और आन्तरिक शान्ति को भंग नहीं करने देना, जल्दबाज़ी में और इन चीज़ों के द्वारा आवेग में आकर न बोलना और न ही कार्य करना, हमेशा आत्मा की एक स्थिर आन्तर स्थिति में रह कर कार्य करना और बोलना। इस समता को पूर्णतः,

पूर्ण मात्रा में प्राप्त करना आसान नहीं है, परन्तु साधक को इसे अपनी आन्तरिक स्थिति तथा बाह्य क्रियाओं का आधार बनाने के लिए हमेशा अधिकाधिक प्रयास करते ही रहना चाहिये।

समता का एक दूसरा अर्थ भी है—मनुष्यों, उनकी प्रकृति और कर्म तथा उन्हें चलाने वाली शक्तियों के बारे में समता का दृष्टिकोण बनाये रखना; यह चीज़ मनुष्य की दृष्टि और विचार में विद्यमान समस्त व्यक्तिगत भावना को, यहाँ तक कि समस्त मानसिक पक्षपात को भी मन से दूर हटा कर मनुष्य तथा उनकी प्रकृति आदि के सत्य को देखने में सहायता पहुँचाती है। व्यक्तिगत भावना हमेशा ही विकार उत्पन्न करती है और मनुष्यों की क्रियाओं में, केवल स्वयं क्रियाओं को ही नहीं, बल्कि उनके पीछे विद्यमान उन चीज़ों को दिखाती है जो प्रायः वहाँ नहीं होतीं। उसका परिणाम होता है ग़लतफ़हमी और ग़लत निर्णय जिनसे बचा जा सकता था; उस समय सामान्य परिणाम लाने वाली चीज़ें बहुत बड़ा रूप ले लेती हैं। मैंने देखा है कि इसी चीज़ के कारण जीवन में इस प्रकार की आधी से अधिक अनपेक्षित घटनाएँ घटती हैं। परन्तु साधारण जीवन में व्यक्तिगत भावना तथा अतिसंवेदनशीलता हमेशा ही मानव-स्वभाव का अंग बनी रहती हैं और आत्मरक्षा के लिए आवश्यक हो सकती हैं, यद्यपि, मेरी राय में, वहाँ भी, मनुष्यों और वस्तुओं के प्रति एक प्रबल, उदार और समता का मनोभाव रखना आत्मरक्षा का अधिक अच्छा उपाय सिद्ध होगा। परन्तु किसी साधक के लिए, उनके पार चले जाना और आत्मा की स्थिर शक्ति में कहीं अधिक निवास करना उसकी प्रगति का एक आवश्यक अंग है।

CWSA खण्ड २९, पृ.१३०-३१

समता का अर्थ कोई नया अज्ञान अथवा अन्धता नहीं है; यह हमसे दृष्टि के धुँधलेपन की तथा समस्त विविधता के अन्त की माँग नहीं करती और न इसे ऐसा करने की आवश्यकता ही है। भेद का अस्तित्व तो है ही, अभिव्यक्ति की विविधता भी विद्यमान है और इस विविधता की हम सराहना करेंगे,—पहले जब हमारी दृष्टि पक्षपातपूर्ण तथा भ्रान्तिशील प्रेम और घृणा से, स्तुति और निन्दा से, सहानुभूति और वैर-विरोध से तथा राग और द्वेष से तिमिराच्छन्न थी तब हम इसे जितना समझ पाते थे उसकी

अपेक्षा अब बहुत अधिक ठीक रूप में समझ पायेंगे। परन्तु इस विविधता के मूल में हम सदा उस परिपूर्ण तथा निर्विकार ब्रह्म को ही देखेंगे जो इसके अन्दर विराजमान हैं और किसी भी विशिष्ट अभिव्यक्ति के—चाहे वह हमारे मानवीय मानदण्डों को सामञ्जस्यपूर्ण एवं पूर्ण प्रतीत होती हो या बेडौल एवं अपूर्ण और चाहे वह मिथ्या एवं अशुभ ही क्यों न प्रतीत होती हो—ज्ञानपूर्ण प्रयोजन या दिव्य आवश्यकता को हम अनुभव करेंगे और जानेंगे अथवा यदि यह हमसे छिपी हुई हो तो कम-से-कम इसमें विश्वास अवश्य करेंगे।

CWSA खण्ड २३, पृ.२२४-२५ **श्रीअरविन्द**

समता

निर्विकार शान्ति तथा अचञ्चलता

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

शान्ति

सत्ता में भागवत उपस्थिति का पहला चिह्न है शान्ति।

स्वयं तुम्हारी सत्ता की गहराइयों में, तुम्हारे वक्ष की गहराई में, ज्योतिर्मयी तथा शान्त, प्रेम तथा प्रज्ञा से भरपूर 'भागवत उपस्थिति' हमेशा विराजमान रहती है। वह वहाँ इसलिए है कि तुम उसके साथ तदात्म हो सको और वह तुम्हें एक ज्योतिर्मयी तथा दीप्त चेतना में रूपान्तरित कर दे।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १७, पृ. ४७६

हर बार जब तुम्हें बेचैनी का अनुभव हो तो तुम्हें बाहर आवाज़ किये बिना, साथ ही मेरे बारे में सोचते हुए, अपने अन्दर बोलते हुए यह दोहराना चाहिये :

"शान्ति, शान्ति, हे मेरे हृदय!" तुम इसे लगातार कहो और परिणाम

से तुम्हें ख़ुशी होगी। मेरा प्रेम और मेरे आशीर्वाद।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १६, पृ. १७२-७३

... कम-से-कम दो बार प्रतिदिन, नीरवता प्राप्त करने का अभ्यास करना सर्वदा ही बहुत अच्छा है, परन्तु वह सच्ची नीरवता होनी चाहिये, केवल बातचीत बन्द करना ही नहीं होना चाहिये।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ३, पृ. २०९

शान्ति और स्थिरता बीमारी के महान् उपचार हैं।
जब तुम अपने कोषाणुओं में शान्ति ला सको, तुम नीरोग हो जाते हो।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १५ पृ. १६७

शान्ति एक ऐसी निश्चल-नीरवता है जो ऐसी चीज़ में गभीर रूप से उतर जाती है जो बहुत सकारात्मक होती है, जो प्रायः तरंगहीन शान्त 'आनन्द' बन जाती है।

CWSA खण्ड २९, पृ. १३७

शान्ति

सभी परिस्थितियों में हमेशा वही चाहना जो 'तू' चाहता है—यही है अटल शान्ति का आनन्द लेने का एकमात्र तरीक़ा

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

The effective manifestation
of Ishwara and Ishwari
in union.

M.

श्रीअरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षाकेन्द्र के प्रतीक का अर्थ

श्रीअरविन्द ने अपने कार्य के विकास के बारे में जो अभिनव रूप सोचा था वह है, पॉण्डिचेरी में एक अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना जिसमें सारी दुनिया से विद्यार्थी आ सकें।

अब यह सोचा गया है कि उनके नाम का सबसे अधिक उचित स्मारक होगा इस विश्वविद्यालय की स्थापना जो इस बात को ठोस रूप में अभिव्यक्त कर सके कि उनका काम अबाध शक्ति के साथ चल रहा है।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १२, पृ. १२१

श्रीअरविन्द सोसायटी का प्रतीक

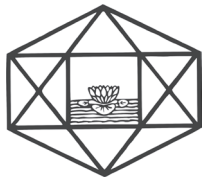

'सोसायटी' के लिए श्रीमाँ द्वारा रचित प्रतीक सोसायटी की गभीरतम अभीप्सा का प्रतिनिधित्व करता है। यह श्रीअरविन्द का प्रतीक है, इसमें एक हीरे के आकार के अन्दर दो प्रति-च्छेदित त्रिकोण हैं। नीचे उतरता हुआ त्रिकोण सत्-चित्-आनन्द का प्रतीक है।

आरोहण करता हुआ त्रिकोण जीवन, प्रकाश तथा प्रेम के रूप में उस जड़-भौतिक का उत्तर है जो अभीप्सारत है।

उन दोनों की सन्धि—केन्द्रीय समचतुष्कोण —पूर्ण अभिव्यक्ति है जिसके बीच में परम का अवतार—कमल—सुशोभित है। समचतुष्कोण के अन्दर का जल विविधता, अर्थात् सृष्टि का प्रतीक है।

बाद में, श्रीअरविन्द के प्रथम अनुयायियों में से एक, नलिनी दा से जब "हीरे के आकार" के बारे में पूछा गया तो उन्होंने व्याख्या दी कि श्रीअरविन्द के अनुसार, हीरा श्रीमाँ के तीव्रतम प्रकाश का द्योतक है। अतः, 'सोसायटी' के प्रतीक को श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ की 'शक्ति' के प्रतिनिधि के रूप में देखा जा सकता है जो मानवता को उसके निर्दिष्ट रूपान्तर की ओर ले जाने के लिए कार्यरत है।

'पुरोधा'

दैनन्दिनी

अप्रैल

१. अभीप्सा को सतत बनाये रखना, उसे सदा जीवन्त, ज्वलन्त और जाग्रत् रखना। और इसके लिए जिस बात की आवश्यकता है वह है एकाग्रता।

२. हृदय की गभीर शान्ति में एक अग्नि जल रही है। यही है तुम्हारे अन्तर में रहने वाले भगवान् का दिव्य अंश—तुम्हारी सत्य सत्ता, (हृत्पुरुष) इसकी आवाज़ सुनो और इसके आदेश का पालन करो।

३. तुम्हारी चेतना की गहराई में तुम्हारे अन्दर रहने वाले भगवान् का मन्दिर, तुम्हारा चैत्य पुरुष है।

४. तुम एक बार चैत्य पुरुष की चेतना को और उसकी अभीप्सा को पा लो तो सन्देहों और कठिनाइयों को नष्ट किया जा सकता है।

५. तुमने एक बार भगवान् की ओर मुड़ कर कहा है : "मैं आपका होना चाहता हूँ," और भगवान् ने "हाँ" कह दिया है तो समस्त जगत् तुमको उनसे अलग नहीं रख सकता।

६. भगवान् सदा अपने साथ पूर्ण शान्ति और स्थिरता लाते हैं।

७. यदि तुम सतर्क हो, यदि तुम्हारी दृष्टि सावधान है तो तुम्हें "जो करना चाहिये" उसकी प्रेरणा किसी-न-किसी रूप में अवश्य मिल जायेगी और तुम्हें तत्काल उसके अनुसार कार्य करने लग जाना चाहिये।

८. समर्पण का अर्थ है कर्मों का जो भी फल हो उसे स्वीकार करना, फिर चाहे वह तुम्हारी आशा के सर्वथा विपरीत ही क्यों न हो।

९. अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति में, चाहे वह बौद्धिक हो या सक्रिय, तुम्हारा एकमात्र मन्त्र होना चाहिये : "स्मरण और समर्पण।"

१०. तुम जो कुछ करो वह सब भगवान् के अर्पण हो। यह तुम्हारे लिए एक उत्तम साधना बन जायेगी और अनेक मूर्खतापूर्ण और निरर्थक चीज़ों से तुम्हारी रक्षा करेगी।

११. तुम जितने अधिक शान्त रहोगे उतने ही अधिक शक्तिशाली बनोगे।

सभी आध्यात्मिक शक्तियों का सुदृढ़ आधार है समचित्तता।

१२. विरोधी शक्तियों से युद्ध में तुम्हारी पराजय एक ही कारण से हो सकती है और वह है भगवान् की सहायता में सच्चे विश्वास का न होना।

१३. सन्देह, निरुत्साह, विश्वास का अभाव, स्वार्थ के साथ अपनी ओर ही मुड़ना—ये चीज़ें हैं जो ज्योति और दिव्य शक्ति से तुम्हें अलग कर देती हैं और आक्रमण के लिए लाभकर होती हैं।

१४. योग-मार्ग में तुम्हें जो ठोकरें खानी पड़ती हैं और आघात सहने पड़ते हैं उनका एक उपयोग यह भी है कि वे तुम्हें समस्त भयों से मुक्त कर दें।

१५. ध्यान के समय पहली और अनिवार्य आवश्यकता है तुम्हारी समस्त चेतना का पूर्ण और नितान्त सच्चाई की अवस्था में होना।

१६. सच्चे आत्म-समर्पण की क्रिया अपने-आपमें अपना प्रत्यक्ष पुरस्कार है—वह अपने साथ ऐसा आनन्द, ऐसा विश्वास, ऐसा संरक्षण लाता है जो किसी चीज़ से नहीं मिल सकता।

१७. उचित भाव का मतलब है : हिम्मत न हारना, श्रद्धा न खोना, अधीर न होना, उदास न होना, तुम जितनी अभीप्सा कर सको उसके साथ शान्त और स्थिर बने रहना, और जो हो रहा है उससे परेशान न होना।

१८. चेतना को उच्चतर विकास के लिए तैयार करने के लिए शिक्षा निश्चय ही सबसे अच्छे तरीक़ों में से एक है।

१९. सुन्दरता उसके चरणचिह्न हैं जो हमें बतलाते हैं कि वह किधर से गुज़रा है। समस्त संगीत उसी के हास्य की आवाज़ है।

२०. हर बार जब तुम्हें बेचैनी का अनुभव हो तो आवाज़ किये बिना धीरे-धीरे मुझे याद करते हुए कहो, "शान्ति, शान्ति, हे मेरे हृदय।"

२१. अचञ्चल रहो और एकाग्र रहो, भागवत शक्ति को अपना काम करने दो, हर चीज़ से, सभी चीज़ों से रोगमुक्त होने का यही सबसे अच्छा उपाय है।

२२. जब हम अपने कोषाणुओं में शान्ति ला सकें तो हम नीरोग हो जाते हैं। सत्ता के अन्दर गहराई में ऐसी शान्ति का निवास है जो सारे शरीर में अचञ्चलता लाती है।

२३. सुखी और शान्त होने का सबसे अच्छा तरीक़ा है गहराई और तीव्रता

के साथ हमेशा भगवान् के प्रति सम्पूर्ण कृतज्ञता का अनुभव करना।

२४. मनुष्य के सभी दुःख-दारिद्र्य इस तथ्य से आते हैं कि उन्हें यह विश्वास होता है कि वे भगवान् से ज़्यादा अच्छी तरह जानते हैं कि उन्हें क्या चाहिये।

२५. मनुष्य को चेतना इसलिए दी गयी है कि वह प्रगति करे, उसे खोज सके जिसे वह नहीं जानता, उस चीज़ में विकसित हो सके जो उसे बनना है।

२६. प्रगति के बारे में चिन्ता न करना ज़्यादा अच्छा है क्योंकि चिन्ता केवल प्रगति में बाधा देती है। पूरे विश्वास और सरलता के साथ भागवत सहायता की ओर खुलना और विजय पर विश्वास रखना ज़्यादा अच्छा है।

शाश्वत की चेतना में निवास करो तो तुम्हें कोई चिन्ता न रहेगी।

२७. महत्त्वहीन चीज़ों को बहुत महत्त्व न दो।

२८. अपने आदर्श के प्रति निष्ठावान् रहो और अपना काम भगवान् के अर्पण करो।

२९. चीज़ों को मधुरता के साथ कह सकना हमेशा बल का चिह्न होता है और दुर्बलता ही हमेशा अप्रिय रूप में फूट पड़ती है।

३०. कठिनाइयाँ इसलिए आती हैं कि तुम्हारे अन्दर सम्भावनाएँ हैं। अगर जीवन में सब कुछ आसान होता तो यह कुछ नहीं का जीवन होता। चूँकि तुम्हारे रास्ते में कठिनाइयाँ आती हैं इससे पता चलता है कि तुम्हारे अन्दर सम्भावनाएँ हैं। डरो मत।

युवाओं के लिए सन्देश

ज़िन्दगी में जो कभी संघर्षों से हार नहीं मानते और अपनी हिम्मत, लगन, कर्मठता नहीं खोते एक दिन सफलता उनके क़दम ज़रूर चूमती है—

'वह मुसाफ़िर ही क्या जिसे कुछ शूल ही पथ से थका दें, हौसले वे क्या जिन्हें कुछ मुश्किलें पीछे हटा दें, याद रख जो आँधियों के सामने भी मुस्कुराते हैं वे समय के पंख पर पदचिह्न अपने छोड़ जाते हैं।'

आती याद बनाने वाले की

देख जगत् की रचना, आती याद बनाने वाले की।
जग-सुषमा में, फूलों में, उनके साथी शूलों में
लता-कुञ्ज के झूलों में पत्र-पुष्प फल-मूलों में—

जग में नव-नव सुन्दरता का खेल रचाने वाले की
देख जगत् की रचना, आती याद बनाने वाले की।
कोयल के कल कूजन का, केकी के शुभ नर्तन का
अभिनव चम्पक कानन का, उनके विकसित आनन का—

पृथ्वी की पाटी पर सुन्दर चित्र बनाने वाले की
देख जगत् की रचना, आती याद बनाने वाले की।
शुभ सुरभित सरिता तीरों से, उत्तुंग अचल प्राचीरों से
झरनों के झरते नीरों से, मणियों से, सुन्दर हीरों से—

धूलि-प्रस्तर-कंकर से भी साज सजाने वाले की
देख जगत् की रचना, आती याद बनाने वाले की।
जीवन का उल्लास लिये, अन्दर की इक प्यास लिये
दुःख-सुख का आभास लिये सुखमय स्वर्णिम इतिहास लिये—

इस मानव की दुनिया को भी स्वर्ग बनाने वाले की
देख जगत् की रचना, आती याद बनाने वाले की।

—इन्दुमती

'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन'

नारियों की सच्ची भूमिका

हमारे सामने प्रश्न यह है कि सामान्यतः नारियों को श्रीअरविन्द की महान् शिक्षा को चरितार्थ करने के लिए क्या करना चाहिये। हम इस प्रश्न को दो पक्षों में लेने की कोशिश करेंगे—नारी पुरुष के सहयोग में क्या कर सकती है, अर्थात् नारी का पूर्ण कार्य क्या है और ऐसा कौन-सा कार्य है जो नारी ही कर सकती है। पहले हमें यह समझना चाहिये कि नारी की सच्ची क्षमता क्या है। माताजी ने एक बार मुझसे कहा था कि नारियों में शक्ति है, बल है। इसका अर्थ क्या है? नारियों के अन्दर कौन-सी शक्ति है जिसे वे मानवजाति के भले के लिए उपयोग में ला सकती हैं?

वह शक्ति सचमुच आध्यात्मिक शक्ति है, चैत्य शक्ति, दिव्य उपस्थिति है। माताजी के अनुसार शायद यह नारियों में ज़रा ज़्यादा केन्द्रित होती है और शायद वे पुरुषों की अपेक्षा स्वाभाविक रूप से उसे अभिव्यक्त करने के ज़्यादा योग्य हैं, परन्तु अभी तक उनकी क्षमता उस हद तक व्यक्त नहीं हुई है जितने की उनसे आशा की जाती है। इस पृष्ठभूमि को लेकर हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि नारी इस क्षमता को कैसे जगा सकती है, इस अतिमानसिक शक्ति, दिव्य शक्ति को अपने मन, प्राण और शरीर में कैसे उजागर कर सकती है, उसके प्रकाश में अपने व्यक्तिगत जीवन, पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन को कैसे व्यवस्थित कर सकती है और स्वयं अपने और मानवजाति के हितार्थ अपनी सच्ची भूमिका कैसे निभा सकती है।

यह शक्ति हमारी समस्त सत्ता—मन, प्राण, शरीर और चैत्य में फैल जाती है। अभीप्सा और आह्वान द्वारा इसे जगाया जाता है और समर्पण द्वारा बढ़ाया जाता है। नारी के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण पहली चीज़ यह है कि वह अपने ही मन में इस मामले में स्पष्ट हो कि उसे न केवल अपने जीवन को बल्कि अपने पति, बाल-बच्चों और नाते-रिश्तेदारों के जीवन को भी अतिमानसिक जीवन में ढालना है। उसे अपने सारे जीवन को इसी दृष्टिकोण से व्यवस्थित करना है—यह पहली बात है।

वह अतिमानसिक जीवन और उसकी अभिव्यक्ति के लिए अपने और अपने परिवेश के समस्त जीवन को कैसे व्यवस्थित करेगी? मैंने नारियों को यह शिकायत करते सुना है कि उन्हें सवेरे से शाम तक घर-द्वार के काम-काज में ही लगे रहना पड़ता है और उन्हें और किसी चीज़ के लिए समय नहीं मिलता और उनके पति इतने अव्यवस्थित रहते हैं कि उन्हें अपने जीवन को व्यवस्थित करने का समय ही नहीं मिलता, बच्चे उनका सारा समय ले लेते हैं। मैं ऐसी नारियों से भी मिला हूँ, हाँ उनकी संख्या बहुत कम होती है जो इसके ठीक विपरीत होती हैं, जो सारे समय काम करती रहती हैं, आजीविका कमाती हैं और पति तथा बाल-बच्चों के होते हुए अपने जीवन को व्यवस्थित कर लेती हैं। अतः जो भी होता है उसके लिए पति को दोष देने की ज़रूरत नहीं। भगवान् हर व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ तैयार कर देते हैं और भगवान् ही व्यक्ति को ऐसी परिस्थितियों में रखते हैं जो उसके विकास के लिए सबसे अधिक सहायक हों।

पहली चीज़ जिसके बारे में तुमको स्पष्ट होना चाहिये वह यह है कि अपने परिवेश के बारे में शिकायत न करो, अपने रिश्तेदारों और नज़दीकी सम्बन्ध रखने वालों के बारे में शिकायत न करो। अपने-आपसे यह पूछो कि भगवान् तुम्हारा किसके साथ और कैसा सम्बन्ध रखना चाहेंगे। भगवान् तुम्हारा किस तरह का जीवन व्यवस्थित करना चाहते हैं—तुम्हारे खाने की, सोने की, सामाजिक जीवन की, काम की कैसी आदतें वे पसन्द करेंगे? मुझे विश्वास है कि एक बार तुम ज्ञान और शक्ति के उच्चतम स्रोत से —अपने अन्दर के भगवान् से—ऐसा निवेदन करो तो भगवान् न केवल तुमको ज़रूरी पथ-प्रदर्शन देंगे बल्कि अपने जीवन को भली-भाँति व्यवस्थित करने के लिए आवश्यक शक्ति और सहायता भी देंगे। इसलिए पहली चीज़ यह है कि अपने-आपको भयभीत, परिस्थितियों द्वारा कुचला हुआ अनुभव न करो बल्कि विश्वास रखो कि यदि तुम सचमुच भगवान् की ओर मुड़ो और उनकी सहायता को पुकारो, उनकी अभिव्यक्ति के लिए एक कार्यक्रम तैयार करो तो उनकी सहायता और उनका सहारा तुम्हारे साथ होगा। और यदि उनका पूरा-पूरा सहारा और साथ प्राप्त हो तो दुनिया-जहान में कोई चीज़ ऐसी नहीं है जो तुम्हें हरा सके।

तुम्हारे अन्दर यह चीज़ बिलकुल स्पष्ट होनी चाहिये कि तुम्हारे जीवन का लक्ष्य है भगवान् का सम्पूर्ण यन्त्र बनना। तुम्हें अपनी बाहरी या मानसिक समस्याओं से हटना या घबराना न चाहिये। तुम्हें उनका सामना करना होगा और उन्हें हल करना होगा और वह करने के लिए तुम्हारे पास काफ़ी बल, बुद्धि और शक्ति है। ये शक्तियाँ तुम्हारे अन्दर मौजूद हैं, तुम्हें केवल उनका आह्वान करना और उन्हें विकसित करना है।

इस पृष्ठभूमि के साथ हम यह देखेंगे कि हमें क्या और कैसे करना चाहिये। पहली बात मैं यह कहूँगा कि नारी को व्यक्तिगत रूप से क्या होना चाहिये। उसके बाद मैं उसके पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन और काम-काज के जीवन की चर्चा करूँगा। व्यक्तिगत रूप से, पहले-पहल नारी को जानना चाहिये कि वह हमेशा ठीक तरह से कैसे काम कर सकती है, बच्चों के कपड़े सीने-पिरोने, पहनने-ओढ़ने से लेकर उसके क्रिया-कलाप के सभी निश्चय मन की जगह उच्चतर चेतना से कैसे लिये जायें।

(क्रमशः) —नवजातजी

टन्... टन्... टन्!

लन्दन शहर में जिम् नाम का एक बूढ़ा ग़रीब रहता था। अकेली जान, आमदनी का कोई ख़ास ज़रिया तो न था लेकिन सीधा-सरल इन्सान था वह, ज़रूरतें भी उसकी न के बराबर थीं। सरकार से जो थोड़ा-बहुत पैसा पाता उसी में हँसी-ख़ुशी गुज़र-बसर करता, साथ ही अपने से ज़्यादा दीन-दुखियों की मदद करने से भी कभी न चूकता। और भी एक ऐसी दिनचर्या थी जिम् की जिसमें कभी कोई भूल-चूक नहीं होती। चाहे मूसलाधार मेंह बरस रहा हो, भयंकर हिमपात हो रहा हो या असह्य गर्मी के मौसम में सब घर में दुबके पड़े हों लेकिन जिम् दोपहर के ठीक बारह बजे अपने घर के पास के गिरजाघर में प्रार्थना करने ज़रूर जाता—इस नियम में कभी किसी दिन भी नागा न हुआ।

लेकिन जिम् मुश्किल से मिनट-भर के लिए गिरजाघर में रुकता। उसकी यह चर्या देख गिरजाघर के पादरी और निरीक्षक की भौंहों पर भी

कई बार बल पड़ते, वे यही सोचा करते कि यह कैसा इन्सान है! अन्दर आते-न-आते तो बाहर जाने की जल्दी मची रहती है इसे। पादरी तो उसे रोज़ देख मुस्कुरा उठते लेकिन निरीक्षक के मन में धीरे-धीरे सन्देह ने घर कर लिया, वह सोचा करता—"ज़रूर यह बूढ़ा किसी दूसरे ख़याल से यहाँ आता है, ग़रीब इन्सान, शायद इसी फ़िराक में रहता हो कि कहीं मेरी नज़र इधर-से-उधर हुई नहीं कि यह कोई-न-कोई सामान लेकर चम्पत हो जाये।" यही सोच-सोच कर निरीक्षक भी रोज़ाना बारह से पहले बहुत चौकन्ना हो 'जिम्' के आने की राह देखता। हफ़्ते और महीने क्या, साल गुज़र गया। रोज़-रोज़ की निगरानी से तंग आकर एक दिन निरीक्षक जिम् से पूछ ही बैठा—"बाबा, तुम रोज़ ठीक बारह बजे यहाँ क्षण-भर के लिए क्यों आते हो भला?"

हक्के-बक्के जिम् ने जवाब दिया—"महाशय, प्रार्थना करने!"

उससे भी आश्चर्यचकित हो निरीक्षक ने पूछा—"क्या, प्रार्थना करने? अजी हटाओ, मज़ाक क्यों करते हो भला? क्षण-भर भी तो ठहरते नहीं गिरजाघर में और कहते हो प्रार्थना करने? सच-सच बताओ आख़िर..."

जिम् ने उसकी बात काटते हुए कहा—"तुम ठीक कहते हो भाई, लम्बी प्रार्थना मुझे आती नहीं, मेरी तो ज़रा-सी प्रार्थना होती है। मैं तो बस यहाँ खड़ा होकर ईसामसीह से यही कहता हूँ—"यीशु, यह रहा जिम्।" अब तुम्हीं बताओ भैया, इत्ती सी प्रार्थना में और कितना समय लगेगा? लेकिन भाई, मुझे पूरा विश्वास है कि मेरी यह नन्हीं-सी प्रार्थना यीशु ज़रूर सुनते होंगे तभी तो दिन-रात मुझे अपनी याद में समोये रखते हैं और ठीक बारह बजे जब मैं यहाँ आता हूँ तो चुपचाप मुस्कुरा कर मेरी प्रार्थना स्वीकार करते हैं।

निरीक्षक का मुँह खुला-का-खुला और आँखें फटी-की-फटी रह गयीं—क्योंकि उस वाणी में छल-कपट या कृत्रिमता का लेशमात्र भी न था। "ये बूढ़े बाबा जो कह रहे हैं वह सच है', मन-ही-मन यह सोच निरीक्षक ने एक बार यीशु की मूर्ति की ओर ताका और फिर बाबा को नमन करने के लिए जो पलटा तो देखा कि वे तो अपनी छड़ी टकटकाते हुए धीरे-धीरे गिरजाघर से बाहर निकल रहे थे।

आज निरीक्षक को लगा कि उसका जीवन सफल हुआ और वह अगले दिन बारह बजे का इन्तज़ार बड़ी बेसब्री से करने लगा...

लेकिन यह क्या? उस दिन बारह की टकोर के साथ बाबा का प्रवेश गिरजाघर में न हुआ...! निरीक्षक का एक-एक पल युगों के समान कट रहा था, घण्टाघर की घड़ी ने एक बजे का घण्टा भी बजा दिया और गिरजाघर सूना-का-सूना पड़ा रहा। निरीक्षक ने पहली बार यीशु से किसी के कुशलक्षेम की इतनी तीव्रता से प्रार्थना की होगी...।

बूढ़े बाबा की उस रोज़ गिरजाघर आते समय गाड़ी से टकरा कर दुर्घटना हो गयी और बारह बजे वे अस्पताल में लाये गये। पैर की हड्डी टूट गयी थी, बाक़ी मरीज़ों के साथ उन्हें भी सरकारी अस्पताल में एक खटिया मिल गयी।

अस्पताल के वातावरण में रोना-धोना, चीख-पुकार और निराशा के स्पन्दन ही मँडरा रहे थे। उनकी खाट के चारों ओर के रोगियों में से कोई असह्य वेदना से कराह रहा था, कोई अपने रोग से तंग आकर चिकित्सक के ऊपर बरस रहा था, कोई और न ख़ुद सो रहा था न दूसरों को आराम करने दे रहा था। बाबा का मन ऐसी जगह आकर एकबारगी काँप उठा—"यीशु! यह कहाँ ले आया तू मुझे?" लेकिन दूसरे ही क्षण वृद्ध ने अपने-आपको सँभाल लिया। उस जगह पर नर्सें भी आने से कतराती थीं क्योंकि उन पर सभी अपना दुःख, ग़ुस्सा, खीज और कुण्ठा निकालते थे। बस कर्तव्य-कर्म की तरह अपना काम कर, वे जल्दी-जल्दी वहाँ से खिसक जातीं।

लेकिन अगले दिन से तो उस बड़े कमरे का नक़्शा ही कुछ-कुछ बदलने लगा और हफ़्ते-भर में वह रूपान्तरित हो उठा। जहाँ दुःख, निराशा और मृत्यु की बातें हुआ करती थीं, दुर्भावनाओं के चमगादड़ लटके रहते थे, वहीं आशा और सुखद जीवन की बातें चहचहाने लगीं। अब वहाँ न तोड़-फोड़ होती थी न चिल्ल-पों, न चिकित्सकों के ऊपर गरजें पड़ती थीं और न ही रोगियों के दुखड़ों से वातावरण बोझिल रहता। सभी ने यह परिवर्तन देखा और अनुभव किया और सभी इसी नतीजे पर पहुँचे कि नूतन रोगी ने पता नहीं कौन-सी अदृश्य छड़ी यहाँ फिरा दी कि सारा वातावरण महक उठा। ख़ुद उसके शरीर में दर्द की लहरें उठा करतीं लेकिन कभी उसके मुँह से आह न निकलती, यही नहीं, अपने दुःख की रत्ती-भर परवाह न कर वह रात-दिन दूसरों को उनके दर्द से छुटकारा दिलाने की, उसे झटक देने की निरन्तर कोशिश में लगा रहता। सचमुच ऐसा जादू था उसकी

प्रेमभरी आँखों में, उसके फूल-से झरते नयनों में कि प्रत्येक रोगी ख़ुशी की उन लहरों में नहा कर प्रफुल्लित हो बाहर निकलता। जहाँ दुःख की वैतरणी बहा करती वहाँ रह-रह कर हँसी-ठट्ठे के झरने फूटने लगे।

अस्पताल के सभी चिकित्सकों, सभी परिचारिकाओं का दिन भी अब अस्पताल में अधिकाधिक बीतने लगा।

सभी के मन में एक ही प्रश्न तैरने लगा—"यह नूतन रोगी क्या कोई जादूगर है जिसने यह मायाजाल रचा रखा है?" उस रोज़ मुख्य परिचारिका जिम् के कमरे में दाख़िल हुई तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, सभी चिकित्सक, कई रोगी उसी बड़े कमरे में आ जुटे थे। उस दृश्य को देख कर इस जगह का नाम 'अस्पताल' कितना बेतुका लग रहा था! वह भी उस झुण्ड में शामिल हो गयी।

एक रोगी कह रहा था—"साहब, पता नहीं जब से जिम् हमारे बीच आया है हमें इसका संक्रामक रोग लग गया है, जब यह हँसता है तो हमारे अन्दर भी बरबस प्रसन्नता उफन आती है...।" दूसरी तरफ़ से आवाज़ आयी, "जी हाँ, यह बिलकुल सच कह रहा है। मुझे तो लगता है कि भगवान् ने अपना कोई फ़रिश्ता हमारे बीच उतार दिया है जो हमें जीवन जीने की कला सिखा रहा है।"

चुपचाप, मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए बाबा की आँखों की चमक और स्वर्णाभ केशों की दमक ने उन्हें सचमुच देवदूत-सरीखा बना दिया था। क्षण-भर कोई कुछ न बोला, उसके बाद उस चुप्पी को तोड़ा मुख्य परिचारिका के इस प्रश्न ने—"बाबा, क्या जादू है आपकी प्रसन्नता का? यहाँ के सभी लोग कहते हैं कि ये संक्रामक ख़ुशी और आनन्द आपने ही सारे अस्पताल में फैलाये हैं?"

बाबा धीमे-धीमे हँसते हुए बोल उठे—"बच्ची, मैं बिलकुल नहीं जानता कि मैंने यहाँ के लिए क्या किया लेकिन, मुझे चौबीसों घण्टे आनन्द देने वाला मेरा अतिथि है।"

"अतिथि!" सब साश्चर्य एक साथ, सस्वर बोल उठे। क्योंकि आज तक कभी किसी ने उनसे मिलने किसी को आते न देखा था।

"लेकिन बाबा, आपकी खाट के पास अतिथियों के लिए रखी कुर्सी तो हमेशा ख़ाली रहती है!" परिचारिका ने बहुत ही चकित होकर कहा।

"बेटी, मेरा अतिथि कुर्सी पर नहीं बैठता, लेकिन यहाँ आने में एक दिन का नागा भी नहीं किया उसने। वह तो रोज़ दोपहर के बारह के घण्टे की टकोर के साथ यहाँ प्रकट हो, मुझसे यह कह कर चला जाता है—

"जिम्, यह रहा यीशु!"

पास ही के घण्टाघर का घड़ियाल बज उठा—बारह बार!!

'अग्निशिखा', अगस्त २००९ से —वन्दना

जो तुम्हारे सम्बन्ध में
तुमसे भी अधिक जानते हैं,
क्या उनसे भी
कुछ कहना है?

अग्निशिखा
श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका
वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२००रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.
संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी
मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस
प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी
प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पॉण्डिचेरी ६०५००१
मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू,
पॉण्डिचेरी ६०५००१, भारत
सम्पादक : वन्दना
स्वामी : श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी-६०५००१
दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८
Email: info@aurosociety.org
Website: www. aurosociety.org

अनन्त समुद्र के परे, नीरवता के शिखरों पर,
अग्निशिखा थामे,
उतरे वे स्वर्ण पुरुष,
जगत् को निहारा उन्होंने, ताकि उनकी महानता और उद्वेग
निर्मुक्त हो बह उठें उसमें।

श्रीअरविन्द

शुभ कामनाओं सहित

श्रीअरविन्द सोसाइटी राजस्थान राज्य समिति,

जयपुर ३०२०१९ (राजस्थान)

www.aurosocietyrajasthan.org

EQUALITY
GENEROSITY
GOODNESS
COURAGE
PROGRESS
RECEPTIVITY
ASPIRATION
PERSEVERANCE
GRATITUDE
HUMILITY
SINCERITY
PEACE
MAHASARASWATI
MAHAKALI
MAHALAKSHMI
MAHESHWARI
ADITI

Date of Publication: 1st April 2024
Rs. 30 (Monthly)

अग्निशिखा एवम् पुरोधा, वर्ष १, अंक ९, PONHIN00007 (RNI)
प्रकाशक स्थलः सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तं स्ट्रीट, पांडिचेरी ६०५००१